वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५४ अंक ११ नवम्बर २०१६

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

नवम्बर २०१६

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५४
अंक ११

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

नवम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

१	भाईदूज
६	छठ पूजा
९	जगद्धात्री पूजा
११	स्वामी सुबोधानन्द
१३	स्वामी विज्ञानानन्द
१४	गुरु नानक जयन्ती

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री लक्ष्मीनारायण इंदुरिया, रायपुर	१०००/-
श्रीमती लीला गांगुली, रायपुर	२१००/-
.....	५०००/-
श्री संजय कंचन, हैदराबाद	२०००/-
श्री नीरज कंचन, पुणे (महा.)	२०००/-
श्री चन्द्रमोहन, टुण्डला, फिरोजाबाद	५५०००/-

विवेक-ज्योति पुस्तकालय योजना

क्रमांक	सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५२.	श्री एम. ए. विश्वास, अहमदाबाद (गुजरात)	डॉ. राधाबाई शा. नवीन कन्या महाविद्यालय, रायपुर
५३.	श्री एम. एल. मिश्रा, सरकंडा बिलासपुर (छ.ग.)	कल्याण कुंज वृद्धा आश्रम, बिलासपुर (छ.ग.)
५४.	श्री बी. के. गांगुली, पचपेड़ी नाका, रायपुर (छ.ग.)	बृजलाल वर्मा शा. महाविद्यालय, पलारी, बलोदाबाजार
५५.	श्रीमती लीला गाँगुली, पचपेड़ी नाका, रायपुर (छ.ग.)	वीर सुरेन्द्रसाय शा. महाविद्यालय, गरियाबंद (छ.ग.)
५६.	श्री बी. के. गांगुली, पचपेड़ी नाका, रायपुर (छ.ग.)	श्री जयदेव सतपथी शा. महाविद्यालय, बसना, महासमुंद
५७.	......	दंतेश्वरी शा. पी.जी. महाविद्यालय, दंतेवाड़ा (छ.ग.)
५८.	......	स्वामी आत्मानन्द शा. महाविद्यालय, नारायणपुर (छ.ग.)
५९.	......	शा. काकातीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जगदलपुर (छ.ग.)
६०.	......	शहीद बापूराव शासकीय महाविद्यालय, सुकमा (छ.ग.)
६१.	......	शहीद वेंकटराव शा. महाविद्यालय, बीजापुर (छ.ग.)

वर्ष ५४ नवम्बर २०१६ अंक ११

हे मोक्षधाम ज्योतिर्मय परमेश्वर !

उँ उशीगसि कविः अङ्घारिरसि बम्भारिः,
अवस्यूरसि दुवस्वान् शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः,
सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानः,
नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनः,
ऋतधामाऽसि स्वर्ज्योतिः ।।

(शुक्ल यजुर्वेद - ५/३२)

भावार्थ – हे देवेश्वर ! तुम सत्यं-शिवं-सुन्दरं एवं सबके द्रष्टा हो। तुम सम्पूर्ण पापों के नाशक हो, अखिल विश्व के धारक और पोषक हो। हे इष्टदेव ! तुम महर्षि-उच्चरित मन्त्रों के द्वारा अपने यजमान-भक्तों के सुस्वादु पदार्थों के इच्छुक हो। अत: तुम हवि के समर्पण से सेवनीय हो।

हे भगवन् ! तुम निरंजन हो, स्वयं शुद्ध हो, इसलिये अपने शरणागत भक्तों को अपने समान विशुद्ध बनाते हो। तुम सम्राट - राजाधिराज हो, अतएव तुम्हारा शासन अग्नि के समान सर्वत्र ददीप्यमान है। तुम ज्ञानियों की सभा में विद्यमान रहते हो। तुम अत्यन्त पवित्र हो।

हे प्रभो ! तुम आकाशवत् सर्वव्यापी एवं विश्व के अधिष्ठान हो। इसलिये तुम्हारे महान स्वरूप में सारा विश्व विलीन हो जाता है। हे परमेश्वर ! तुम मधुर, प्रेमास्पद, हव्यदोषनाशक, त्रिकालाबाधित परम सत्य हो, तुम मोक्षधाम, अखण्ड आनन्द-निधि और स्वयं ज्योतिरूप हो !

पुरखों की थाती

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो
वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः।
वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिपपुरे
वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः।।५२६।।

– गोशाला सूनी पड़ी रहे तो भी ठीक है, परन्तु दुष्ट बैल का रहना ठीक नहीं है । ... बल्कि वन में रहना ठीक है, परन्तु अविवेकी राजा के राज्य में रहना ठीक नहीं । बल्कि प्राण त्याग देना ठीक है, परन्तु नीचों के साथ रहना उचित नहीं ।

वृत्त्यर्थं नातिचेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता ।
गर्भादुत्पतिते जन्तौ मातुः प्रस्त्रवतः स्तनौ ।।५२७।।

– व्यक्ति को आजीविका के लिए बहुत चिन्तित होने की जरूरत नहीं, क्योंकि उसे विधाता ने पहले ही बना रखा है । प्राणी के जन्म लेते ही माता के स्तनों से दूध बहने लगता है ।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।५२८।।

– विपत्ति में धैर्य, समृद्धि में क्षमा, सभा में वाक्चातुरी, युद्ध में पराक्रम, यश में रुचि और शास्त्रों में व्यसन – ये लक्षण महापुरुषों में स्वाभाविक रूप से ही रहा करते हैं ।

विविध भजन

जाने कब प्राण तन से निकल जायेंगे

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

किस लिये आस छोड़ें कभी-न-कभी,
क्षण विरह के मिलन में बदल जायेंगे।
नाथ कब तक रहेंगे कड़े, एक दिन
देखकर प्रेम आँसू पिघल जायेंगे।।
शबरी केवट जटायु अहिल्यादि के,
पास पहुँचे प्रभु त्याग करके अवध।
ये हैं घटनाएँ सच तो भरोसा हमें,
खुद-वा-खुद आप आकर के मिल जायेंगे।।
दर्श देनें को रघुबरजी आयेंगे जब,
हम न मानेंगे अपनी चलाये बिना।
जाने देंगे न वापस किसी शर्त पर,
बस कमल पद पकड़कर मचल जायेंगे।।
फिर सुनायेंगे खोटी-खरी आपको,
और पूछेंगे देरी लगाई कहाँ।
फिर निवेदन करेंगे न छोड़ो हमें,
प्रभु की जूठन प्रसादी पर पल जायेंगे।।
स्वप्न साकार होगा तभी रामजी,
जन पे हो जाये थोड़ी कृपा आपकी।
पूर्ण कर दो मनोरथ ये 'राजेश' का,
जाने कब प्राण तन से निकल जायेंगे।।

दरसन बिन प्रभु तोर

स्वामी रामतत्त्वानन्द

दरसन बिन प्रभु तोर।
जीवन मेरा सूना सूना, डगमग नैया मोर।।
गिरीश घोष सम पापी तारे, कालीपद के सहारे,
विपथगामी नर्तकी को, स्नेह नयन से दुलारे।
थका पथिक मैं बीच भँवर में, अब तो बारी मोर।।
दरसन देकर मथुर मोहन के भारी दुख मिटाये,
रो रहे थे जब सुरेन तब सूक्ष्मदेह घर आये।
रामकृष्ण तुम भवभयहारी, पुरहु मनोरथ मोर।।
भुलत-भटकत जो भी स्वामी तव चरणों में आया,
जग-ज्वाला से तप्त जीव को दे अवलंब बचाया।
प्रेमामृत प्रभु पिला-पिलार सबको किया विभोर।।
नैना पल-पल नीर बहावे विरह अगिनि में जलावे,
रसना क्षण-क्षण नाम जपै, तबहु न मोहि सुधि आवे,
आशादीप बुझन से पहले, परगट हो करो भोर।।

जो शरण लिया हनुमान की

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

जो शरण लिया हनुमान की-२
राहु-केतु-शनि भय से काँपे,
कृपा होत भगवान की।।
जो शरण लिया हनुमान की ...

दुख-संकट अरु क्लेश विकट,
कबहूँ नहीं सतावै, कबहूँ नहीं ...
संकटमोचन हनुमत् खोलत,
द्वार मंगल धाम की।।
जो शरण लिया हनुमान की ...

भजन-साधना इष्ट-कृपा का,
हो सच्चा अधिकारी, हो सच्चा ..
अंजनीसुत की कृपादृष्टि से,
भक्ति मिले श्रीराम की।।
जो शरण लिया हनुमान की ...

महेश गणेश, रमेश, सुरेश,
सुर-मुनि सब नित वन्दें, सुर...
ढोल झाँझ मृदंग सह गावैं,
जय जय जय हनुमान की।।
जो शरण लिया हनुमान की ...

सुर-मुनि सबके अतिप्रिय कपिवर,
सभी भक्ति से ध्यावैं, सभी ...
कहते ही जय हनुमान,
स्नेह मिले श्रीराम की।।
जो शरण लिया हनुमान की ...

तनावमुक्त शान्तिमय जीवन हेतु अपनाएँ ऋषियों के उपदेश

क्या परमात्मा द्वारा प्रदत्त जीवन हमें इसीलिये मिला था?

आज जगत का अधिकांश मानव अत्यधिक व्यस्त, व्यग्र, चंचल और तनावग्रस्त है। किसी को किसी से बात करने का समय नहीं है। माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल, कोचिंग और छात्रावास में भेजकर निश्चिन्त हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें बच्चों को देखने और उनकी बात सुनने का समय ही नहीं है। रास्ते में किसी से कुछ पूछ दो, तो उन्हें बताने का समय नहीं। सीधे चले जाते हैं। एक बार तो अति हो गया। एक वृद्धा सड़क पर मोटर साइकिल से घायल होकर गिर गई। मोटर साइकिल वाला तो भाग गया। वह बहुत देर तक चिल्लाती रही, किन्तु आने-जानेवालों में किसी को रुककर उसे उठाने की सुधि नहीं रही। बहुत देर बाद किसी ने उसे रोड से उठाकर किनारे बैठाया और अस्पताल में भर्ती किया और उसके घर सूचना दी। ऐसी संवेदनाहीन परिवार-समाज-कर्तव्यविमुख व्यस्तता है।

लेकिन दुर्भाग्य है कि ऐसे लोगों का बहुत-सा समय मनोरोगी चिकित्सक के यहाँ घण्टों लाइन लगाकर दिखाने में लग जाता है। उनका समय ट्रेन, बस की प्रतीक्षा और ट्राफिक में फँसकर चला जाता है, पारिवार, परिजन से परस्पर असमझ से विवाद में चला जाता है। बात न बनने पर 'पारिवारिक कलह परामर्श केन्द्र' में बीत जाता है। न ठीक से खा पाते हैं, न सो पाते हैं, न प्रेम से हँसकर एक-दूसरे से बात कर पाते हैं। इतना होने पर भी किसी में यह चेतना नहीं जागती कि वह यह सोचे कि उसके साथ ऐसा क्यों हो रहा है? बहुत हुआ, तो लोग अँग्रेजी, आयुर्वेद, होमियोपैथ या प्राकृतिक चिकित्सकों के परामर्श पर कुछ दवाइयाँ खाकर, कुछ पथ-परहेज कर थोड़ा स्वस्थ होकर दैनिक कार्यों में लग जाते हैं, किन्तु मानसिक अवस्था वैसी ही बनी रहती है। वही खिन्नता, तनाव, दबाव, असन्तुष्टि, असन्तुलित जीवनचर्या, जिससे मिलता है स्थायी शारीरिक और मानसिक रोग। क्या परमात्मा द्वारा प्रदत्त जीवन हमें ऐसे ही और इसी प्रकार जीने को मिला था?

क्या हम आनन्द में नहीं रह सकते?

प्रश्न उठता है कि क्या हम तनावरहित सन्तुलित सानन्द जीवन नहीं बिता सकते? क्या हमारी प्रकृति हमारे नियन्त्रण में नहीं आ सकती? आइये, हम इन रोगों के मूल में जाकर इनके स्थायी निदान का हमारे ऋषियों के परिप्रेक्ष्य में अनुसन्धान करें।

स्वरूप-अप्रतिष्ठा सब दुखों का मूल है

योगसूत्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि ने कैवल्यपाद के अन्तिम सूत्र में लिखा है – **पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति।।** अर्थात तब साधक अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, जिसे कैवल्य कहते हैं। जिज्ञासा होती है कि क्या वह पहले स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं था? महर्षि कहते हैं – **वृत्तिसारूप्यमितरत्र** – दूसरे समय साधक चित्तवृत्तियों से युक्त रहता है। उसके मन में विभिन्न विचार उठते रहते हैं, जिससे वह स्वरूप से विस्खलित हो जाता है। उसका उपाय क्या है? तब महर्षि चित्तवृत्तियों के निरोध का योग-मार्ग बताते हैं, जिसे राजयोग कहा जाता है। पुन: जिज्ञासा होती है, चित्तवृत्तिनिरोध से क्या होगा? महर्षि कहते हैं – **तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् –** तब साधक स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। यही मानव जीवन का लक्ष्य है।

रामचरितमानस में भगवान श्रीराम कहते हैं –

मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा।।

मेरे दर्शन से जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त करता है। हमारा स्वरूप सच्चिदानन्दमय है, चैतन्यमय, आनन्दमय है। हम स्वरूपच्युत होकर सारे दुख पाते हैं।

जीवन-लक्ष्य क्या है ? – जीवन-लक्ष्य के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – "प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य एवं अन्त:प्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। इसे कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग, इनसें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों की सहायता से अपने ब्रह्मभाव को व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।" (वि.सा. १/१७३) अन्यत्र स्वामीजी कहते हैं – "केवल ईश्वर ही हमारा लक्ष्य है। उसकी प्राप्ति न हो पाना ही हमारी मृत्यु

है।'' एक अन्य स्थान पर स्वामीजी कहते हैं – ''भारतवर्ष में जितने वेदमतानुयायी दर्शनशास्त्र हैं, उन सबका एक ही लक्ष्य है – पूर्णता प्राप्त करके आत्मा को मुक्त कर लेना। इसका उपाय है योग।''

जीवन-लक्ष्य की उपेक्षा और विस्मरण – जन्म-जन्मान्तरों के विषयी संस्कारों के कारण हम स्व जीवन लक्ष्य का विस्मरण और उपेक्षा करते हैं, जिससे हम अपने मूल आनन्दमय स्वरूप से विच्युत होकर दुख पाते रहते हैं। अपने पास ही सुख-शान्ति और आनन्द की निधि होने के बाद भी दूसरे से आनन्द की याचना करते हैं। क्या यह विडम्बना नहीं है?

शान्तिमय स्वरूप से विचलित करनेवाले तत्त्व

दुख क्यों? – भक्तिशास्त्रानुसार भगवत्पदानुराग नहीं होने से दुख होता है। राजयोग ने पहले ही कहा है, मन स्वरूप में न रहकर बाकी समय इधर-उधर भागता रहता है, एकाग्र नहीं होता। यहाँ वे दुख-कारण को कहते हैं – **दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः** – दुख, मानसिक अवसाद, शारीरिक अस्थिरता, अनियमित श्वास-प्रश्वास, ये सभी एकाग्रता के अभाव के साथ-साथ उत्पन्न होते हैं। इसके उपाय में वे कहते हैं कि – **तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः** – इसलिये साधक को एकतत्त्व का अभ्यास करना चाहिए। भक्तिशास्त्रानुसार सच्चिदानन्दघन एक परमात्मा में मन को लगाना चाहिये, तब मन अन्य सांसारिक विषयों में लिप्त होकर दुखी नहीं होता, अपितु शाश्वत परमात्म सुख की अनुभूति करता है।

महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में योग के बाधक तत्त्वों और उसके निदान का स्पष्ट उल्लेख है – **वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभ-क्रोध-मोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्** – योग के बाधक हिंसा आदि कर्म स्वयं किये हुये, दूसरों से करवाये हुये या अनुमोदित होते हैं। इनके कारण लोभ, क्रोध और मोह हैं। इनमें कोई अल्पाधिक होने से इनके अज्ञान और क्लेश रूप अनन्त फल हैं। ऐसा विचार करना ही प्रतिपक्ष भावना है।

काम-क्रोध-लोभ-मोहादि षड्रिपुओं के अनियन्त्रण से जो दुखप्रद मानसिक विकार होते हैं, उनसे मुक्ति हेतु कहते हैं – **मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षाणां सुख-दुःख-पुण्यापुण्य-विषयाणां-भावनातश्चित्तप्रसादनम्** – सुख, दुख, पुण्य और पाप इन भावनाओं के प्रति यथाक्रम मैत्री, करुणा, आनन्द और उपेक्षा की भावना करने से चित्त प्रसन्न होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे मानसिक तनाव, द्वन्द्व और समस्त विवादों का कारण स्वयं हमारी मनोवृत्तियाँ हैं।

दुखद मनोविकारों से कैसे बचें?

यदि क्लेशात्मक विकार हमारे मन से स्वयं हुआ है, तो हम स्वयं ही मनोनियन्त्रण द्वारा इसे दूर कर सकते हैं। भक्त ईश्वर के नाम-जप और ध्यान से, कर्मयोगी निष्काम कर्म से और राजयोगी योग से मनोनियन्त्रण कर सकते हैं – **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**। योग में योग के अंग – यम-नियम-आसन-प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का पालन करना आवश्यक है।

सार्वभौमिक महाव्रत से मानसिक शान्ति

समाज में हिंसा, झूठ, चोरी, दुराचार, संचय, लोभ के अल्पाधिक मात्रा में होने के कारण अनेक अपराध होते रहते हैं। अपराधी को कभी भी मानसिक शान्ति नहीं मिल सकती। इसीलिये कारागार में भी कैदी आत्महत्या कर लेते हैं। इनसे बचकर मानसिक शान्ति हेतु महर्षि पतंजलि के सार्वभौमिक महाव्रतों का पालन अत्यन्त व्यावहारिक होगा। ऋषि कहते हैं – **अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यपरिग्रहा यमाः। एते जाति, देश, काल समयावच्छिन्नाः सार्वभौम महाव्रताः।।** – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह, ये देश-कालानुसार महाव्रत हैं। इनका जीवन में आचरण करने से मानसिक तनाव दूर होगा, चित्त शान्त होगा। साथ ही पवित्रता, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधानादि नियमों के पालन से हमारा मन शुद्ध, शान्त और प्रसन्न रहेगा। ऐसा मन ही परमात्मा में एकाग्र होगा। स्वामीजी कहते हैं – मन की एकाग्रता ही समस्त ज्ञान का उद्गम है। योग हमें जड़-तत्त्व को अपना दास बनाने की शिक्षा देता है। योग का अर्थ है जोड़ना, अर्थात् जीवात्मा को परमात्मा से जोड़ना। जीवन में शान्ति एवं सफलता हेतु स्वामीजी का यह महामन्त्र सबको याद रखना चाहिये – १. इन्द्रिय भोग-कामना का त्याग २. भगवत्प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा ३. (क) मन को बहिर्मुख न होने देना (ख) इन्द्रिय निग्रह (ग) मन को अन्तर्मुखी बनाना ४. प्रतिक्रियारहित सहिष्णुता, पूर्ण तितिक्षा ५. मन को एक भाव में स्थिर रखना। ध्येय को सम्मुख रखकर अखंड चिन्तन करना ६. अपने स्वरूप का सतत चिन्तन करना, पवित्रता, पुरुषार्थ, धैर्य तथा सबके लिये प्रार्थना करना। ○○○

जन-साधारण की शिक्षा

विवेक वाणी

स्वामी विवेकानन्द

जनता को शिक्षित और उन्नत कीजिये । इसी तरह एक राष्ट्र का निर्माण होता है ।... सारा दोष यहाँ है : यथार्थ राष्ट्र जो कि झोपड़ियों में बसता है, अपना मनुष्यत्व भूल चुका है, अपना व्यक्तित्व खो चुका है । हिन्दू, मुसलमान, ईसाई – हर एक के पैरों-तले कुचले गये ये लोग समझते हैं कि जिसके पास भी पर्याप्त धन है, उसी के पैरों-तले कुचले जाने के लिये उनका जन्म हुआ है । उन्हें उनका खोया हुआ व्यक्तित्व लौटाना होगा । उन्हें शिक्षित करना होगा ।... हमारा कर्तव्य केवल रासायनिक पदार्थों को एकत्र भर कर देना है, इसके बाद ईश्वरीय विधान से वे स्वयं ही रवे में परिणत हो जायेंगे । हमें केवल उनके मस्तिष्क को विचारों से भर देना है, बाकी सब कुछ वे स्वयं ही कर लेंगे । इसका अर्थ हुआ – आम जनता को शिक्षित करना । इसी में कठिनाइयाँ हैं । एक दिवालिया सरकार कभी कुछ नहीं कर सकती है, न करेगी; अत: उस दिशा से किसी सहायता की आशा नहीं है ।

अब मान लो कि हम प्रत्येक गाँव में नि:शुल्क पाठशाला खोलने में समर्थ हैं, तो भी गरीब लड़के स्कूलों में आने की अपेक्षा अपने जीविकोपार्जन हेतु हल चलाने जायेंगे । न तो हमारे पास (शिक्षा देने हेतु) धन है और न हम उनको शिक्षा के लिये बुला ही सकते हैं । समस्या निराशाजनक प्रतीत होती है । मैंने एक रास्ता ढूँढ निकाला है । वह यह है कि यदि पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं आता, तो मुहम्मद को ही पहाड़ के पास जाना होगा । यदि गरीब शिक्षा लेने नहीं आ सकते, तो शिक्षा को ही उनके पास – खेत में, कारखाने में और हर जगह पहुँचना होगा । यह कैसे? आपने मेरे गुरुभाइयों को देखा है । मुझे सारे भारत से ऐसे नि:स्वार्थ, अच्छे एवं शिक्षित सैकड़ों नवयुवक मिल सकते हैं । ये लोग गाँव-गाँव जाकर हर द्वार पर केवल धर्म ही नहीं, शिक्षा भी पहुँचायेंगे । इसलिये मैं भारत की नारियों के लिये शिक्षिकाओं के रूप में विधवाओं की भी एक छोटी-सी टोली संगठित कर रहा हूँ ।

अब मान लो कि ग्रामीण लोग अपना दिन भर का काम समाप्त करके अपने गाँव में लौट आये हैं और किसी पेड़ के नीचे या कहीं और बैठकर, हुक्का पीते हुए गप लड़ाते समय बिता रहे हैं । मान लो, दो शिक्षित संन्यासी वहाँ पहुँच जायें और प्रोजेक्टर की सहायता से उन्हें ग्रह-नक्षत्रों या भिन्न-भिन्न देशों के या ऐतिहासिक दृश्यों के चित्र दिखाने लगें । इस प्रकार ग्लोब, नक्शे आदि के द्वारा जबानी ही कितना काम हो सकता है?... केवल आँख ही ज्ञान का एकमात्र द्वार नहीं है, कान से भी यह काम हो सकता है । इस प्रकार नये-नये विचारों तथा नीतियों से उनका परिचय होगा और वे एक बेहतर जीवन की आशा करने लगेंगे । हमारा काम यहीं समाप्त हो जाता है । बाकी सब उन्हीं पर छोड़ देना होगा ।

हमारे देश में हजारों निष्ठावान और त्यागी साधु हैं, जो गाँव-गाँव धर्म की शिक्षा देते फिरते हैं । यदि उनमें से कुछ को सांसारिक विषयों के शिक्षकों के रूप में भी संगठित किया जा सके; तो गाँव-गाँव और द्वार-द्वार पर जाकर वे केवल धर्मशिक्षा ही नहीं, बल्कि भौतिक शिक्षा भी देंगे । मान लो, इनमें से दो लोग शाम को अपने साथ एक प्रोजेक्टर, एक ग्लोब और कुछ नक्शे आदि लेकर किसी गाँव में जाते हैं । वहाँ वे अपढ़ लोगों को गणित, ज्योतिष और भूगोल की बहुत कुछ शिक्षा दे सकते हैं । वे गरीब पुस्तकों से जीवन भर में जितनी जानकारी न पा सकेंगे, उससे सौगुनी अधिक जानकारी वे उन्हें बातचीत के माध्यम से विभिन्न देशों के बारे में कहानियाँ सुनाकर दे सकते हैं ।

यदि स्वभाव में समता न भी हो, तो भी सबको समान सुविधा मिलनी चाहिये । फिर भी यदि किसी को अधिक तथा किसी को कम सुविधा देनी हो, तो बलवान की अपेक्षा दुर्बल को अधिक सुविधा देनी होगी । अर्थात् शूद्र को शिक्षा की जितनी जरूरत है, उतनी ब्राह्मण को नहीं । यदि किसी ब्राह्मण के पुत्र के लिये एक शिक्षक की जरूरत हो, तो शूद्र के लड़के के लिये दस शिक्षक चाहिये । कारण यह है कि जिसकी बुद्धि की स्वाभाविक प्रखरता प्रकृति के द्वारा नहीं हुई है, उसकी बाहर से अधिक सहायता करनी होगी । ○○○
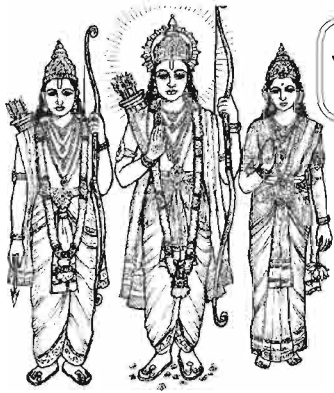
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (१/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

रावण और विभीषण के संदर्भ में बड़े महत्त्व के तत्त्व और सत्य सामने आते हैं। उसका सूत्र वही है। रावण का सिर कट जाता है, रावण की भुजा कट जाती है, किन्तु रावण का सिर और रावण की भुजा फिर से निकल आते हैं। यह तो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का सत्य है। जो बुरइयों से नहीं लड़ रहे हैं, उनकी बात जाने दीजिये। पर जो बुराइयों से लड़ रहे हैं, वे विचार कर सकते हैं। रावण का सिर कट जाने का क्या तात्पर्य है? सिर ही तो बुद्धि का केन्द्र है। व्यक्ति जो समझता है, वह तो बुद्धि के द्वारा ही समझता है। इसका अर्थ है कि जब भी किसी बात को सुनकर हम समझते हैं कि यह तो बिल्कुल ठीक है, यह तो पाप है, यह तो बुराई है, तो यही लगता है कि सचमुच इस बुराई को मिटना ही चाहिये। इसी को यों कह लीजिये। आप नित्य सत्संग में शायद यह अनुभव करते होंगे। जब सुनते होंगे, तो ऐसा लगता होगा कि वाह कितनी बढ़िया बात है, पर ज्यों ही कथा से बाहर निकले कि रावण का सिर तो ज्यों का त्यों अपने स्थान पर है। जितना सुना था वह तो ठीक था, पर फिर से जहाँ के तहाँ हो गये। इसका अर्थ यह है कि बुद्धि से समझकर भी वही बातें बार-बार फिर लौटकर आती हैं। भुजाओं के कट जाने का तात्पर्य है कि आप जो सत्कर्म करते हैं, पुण्य करते हैं, जो धर्म करते हैं, उसमें तो आपके हाथ की मुख्य भूमिका है। आप पूजा करेंगे, जप करेंगे, दान-सेवा करेंगे, उसका तो मुख्य केन्द्र हाथ ही है। वहाँ पर भी वही संकेत है। हम कर्म के द्वारा अच्छा आचरण करते हुये भी उसे स्थायी नहीं रख पाते। जिन हाथों से हम सत्कर्म करते हैं, उन्हीं हाथों से दुष्कर्म भी करने लग जाते हैं। इस समस्या का समाधान क्या हो सकता है?

यही समाधान मानो त्रिजटा के द्वारा दिया गया। त्रिजटा कहती है, आवश्यकता है रावण के हृदय पर प्रहार करने की। आश्चर्य होता है किशोरीजी को, कि प्रभु के पास तो बाणों की कोई कमी नहीं है, क्यों नहीं वे एक बाण रावण के हृदय पर चलाकर रावण का संहार कर देते। पर आप पढ़िए, जो बात कही गई। त्रिजटा कहती है –

कह त्रिजटा सुनु राज कुमारी।
उर सर लागत मरइ सुरारी।। ६.९८.१२

भगवान उसके हृदय पर एक बाण मार कर उसका वध क्यों नहीं कर देते? बोली –

प्रभु ताते उर हतइ न तेही।
एहि के हृदयँ बसति बैदेही।। ६.९८.१२

इसका अभिप्राय यह है कि रावण के हृदय में निरन्तर श्री सीताजी की स्मृति बनी हुई है। वह एक क्षण के लिये भी नहीं भूलता। उसमें इतनी एकाग्रता है कि क्षण भर के लिये भी श्री सीताजी का चिन्तन और ध्यान कभी टूटता ही नहीं । रावण सीताजी का चिन्तन तो करता है, इतना एकाग्र है, पर रावण को हम भक्त नहीं मानते। रावण भक्त नहीं था। रावण को भक्त मानने की भूल नहीं करनी चाहिये। रावण तो वस्तुत: रामचरितमानस में उन दुर्गुणों का प्रतीक है, जो हमारे जीवन को संत्रस्त किये हुए हैं, बुराइयों से जोड़े हुए हैं। रावण इतना एकाग्र है। इसको भी जरा विचार करके देखिए, सच पूछिए तो जितने भोगवादी होते हैं, जितने शरीरवादी होते हैं, वे बहुत एकाग्र होते ही हैं। बल्कि किसी ने भगवान राम के विषय में कहा कि भगवान राम की सेवा करनी चाहिये, जैसे लक्ष्मण जी करते हैं। तो सुनने वाले ने कहा कि कहाँ लक्ष्मण और कहाँ हम? हम उनके समान सेवा कैसे कर सकेंगे? तब गोस्वामीजी ने कहा, कौन कहता है कि लक्ष्मणजी आपसे

बड़े सेवक हैं। लक्ष्मणजी बिल्कुल आपकी और हमारी ही तरह थे। उन्होंने उपमा कौन-सी दी?

सेवहि लखन सीयरघुबीरहिं।

लक्ष्मणजी श्रीराम और श्रीसीताजी की सेवा करते हैं। कैसे?

जिमि अविवेकहिं पुरुष सरीरहि।।

जितनी तन्मयता से हम और आप शरीर की सेवा करते हैं, उससे अधिक लक्ष्मणजी थोड़े ही करते हैं। हमलोग कहीं भी लक्ष्मण जी से कम नहीं हैं, केवल लक्ष्य का अन्तर है। हमलोगों का लक्ष्य शरीर है और उनका लक्ष्य श्रीराम हैं। क्या हम लोगों का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक क्रिया-कलाप शरीर को लेकर नहीं है? क्या हम शरीर की ही चिन्ता में नहीं डूबे हुए हैं? क्या शरीर को ही सुखी बनाने का प्रयास नहीं करते हैं? दिन-रात, प्रतिक्षण हम शरीर की सेवा करते हैं, शरीर की पूजा करते हैं। इस तरह से कहें तो रावण की जो एकाग्रता है, वह किसी भी योगी से कम नहीं है, पर अन्तर इतना ही है कि रावण ध्यान करता है सीताजी का, पर सीताजी को क्या मानकर करता है? फिर वही बात। उसकी योग की दृष्टि भोग पर है। इसका अभिप्राय है कि जब वह यह कहता है कि तुम मेरी ओर दृष्टि डालो, और वह चाहता है कि वह उसके रनिवास में रहें और उसकी पत्नी बनकर रहें, इस पतित दृष्टि से जब वह श्रीसीताजी को देखता है, तो मानो उसका अभिप्राय यह है कि रावण की सारी एकाग्रता का लक्ष्य भोग है, वह उस महाशक्ति को भोग्य की दृष्टि से देखता है, भोग ही उसका लक्ष्य है। वह अपने आपको भोक्ता के रूप में देखता है। इसका अभिप्राय यह है कि हमारी सारी क्षमताएँ भोगों को पाने के लिये हैं। हम कितना भी एकाग्र क्यों न हो जाएँ, अन्त में उसका परिणाम विनाशकारी ही होगा। योग के द्वारा हम भोग को लक्ष्य बना लें, तब तो निश्चित रूप से विनाश अवश्यम्भावी है। यही रावण की समस्या है और रावण की ही नहीं, संसार में अगर हम गहराई से झाँककर देखें, तो हमारी आपकी सबकी समस्या है। हम भोगों में कितना एकाग्र हो जाते हैं, कितनी एकाग्रता आती है भोजन करते समय, संसार में सांसारिक वस्तुओं का रस लेते समय। हमारा मन इनमें अत्यन्त एकाग्र हो जाता है। किसी ने आकर किसी महात्मा से कभी नहीं पूछा होगा कि भोजन में मेरा मन कैसे लगे, पत्नी की याद में कैसे मेरा मन एकाग्र हो, किस माला से हम पत्नी के नाम का जाप करें? किसी ने किसी से क्या कभी पूछा है? वह तो बिना प्रयास के निरन्तर चलते रहता है। गोस्वामीजी ने भगवान राम से यही कहा कि प्रभु मैं चाहता हूँ कि आप मुझे प्रिय लगें। कैसे प्रिय लगें?

राम कबहु प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन को।
ज्यों सुभाय प्रिय लागत नागरी नागर नवीन को।।

जैसे मछली को जल प्रिय है। भगवान ने कहा, यह तो बड़ी ऊँची उपमा दे दी तुमने। और तब उन्होंने कितनी सांसारिक उपमा दी। जैसे एक नवयुवक को नवपरिणीता युवती का आकर्षण जितना प्रिय प्रतीत होता है, उसे देखता है, चिन्तन करता है। हे प्रभु! कब मेरी दशा ऐसी होगी कि मैं उस प्रकार आपका चिन्तन करूँगा।

इसका अभिप्राय है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति योगी तो है ही। क्योंकि संसार के विषयों में जो रस मिलता है, वह एकाग्रता से ही मिलता है। पर प्रश्न यह है कि उस एकाग्रता का प्रयोग हम उन वस्तुओं के लिये कर रहे हैं, जो सहज भाव से मिल रहा है। उसके लिये कोई अभ्यास और प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। यही बात गोस्वामीजी रामायण के अन्त में भी दुहराते हैं –

कामिहि नारि पियारि जिमि
लोभिहि प्रिय जिमि दाम। ७.१३०.ख

लोग महात्माओं से आकर पूछते हैं कि महाराज, बताइये, कितनी संख्या में जप करने पर कल्याण होगा? किन्हीं संतों ने अपने अनुभव से लिख दिया कि दो करोड़ दस लाख जप कर ले, तो भगवान का साक्षात्कार होता है। अंक का आंकड़ा सुनते ही लोग घबरा जाते हैं, महाराज, इतना जप? दो करोड़ दस लाख? किसी से पूछ दीजिये कि अगर आपको दस करोड़ रुपये मिल जाय तो? वे कहेंगे, दस क्या, पचास करोड़ मिल जाय, तो भी कम है। लोभ के संदर्भ में हमें अंकों की बड़ी संख्या आतंकित नहीं करती, पर भगवान के नाम-जप की संख्या सुनकर हम आतंकित हो जाते हैं। दिन में दस हजार जप कर लिया, आपको बड़ी बात लगती है, और दस लाख रुपया एक दिन में मिल जाय, तो ऐसे भी उद्योगपति हैं, या लोभी व्यक्ति हैं, क्या उन्हें लगता है कि यह बहुत बड़ी संख्या है? सभी लोगों में यही भाव है। हम सब

लोग केवल संसार के विषयों का ही सेवन करते हैं और उसी का परिणाम हमारे जीवन में दुख के रूप में आता है।

सूत्र तो वही है। रावण तो एकाग्र है, महान एकाग्र है। पर बस रावण का वही दुर्भाग्य है, जो हम सबका दुर्भाग्य है। वह क्या है? रावण जब श्रीसीताजी का चिन्तन करता है, तो देखता है, यह सीताजी हैं और इन्हें पाना है, इन पर अधिकार करना है, इनको भोग्य बनाना है। त्रिजटा ने बताया कि भगवान राम की समस्या यह है, वे देखते हैं कि रावण के हृदय में आपका इतना प्रगाढ़ चिन्तन है और साथ-साथ आप किसका चिन्तन कर रही हैं? श्रीसीताजी निरन्तर श्रीराम के चिन्तन में डूबी हुई हैं। यही एक मूल सूत्र है, जिसे समझना है। जिस समय श्रीभरतजी चित्रकूट की ओर जा रहे थे और उधर महर्षि भरद्वाज ने उनके स्वागत में संसार के दिव्य-से-दिव्य भोग अपनी सिद्धि के द्वारा उपस्थित कर दिये, तो अयोध्यावासी चकित हो गये। किन्तु श्रीभरतजी ने उन विषयों को देखा ही नहीं, वे रात्रि में उसके बीच में रहे, पर रात्रि में उनका चिन्तन क्या था? जब उन्होंने देखा –

सुर सुरभी सुरतरु सबही के
लखि अभिलाषु सुरेस सचीं के।। २.२१४.६

तो अन्य लोगों को लगा कि इतने भोग प्राप्त हैं, तो इन्हें हमें भोगना चाहिये। किन्तु श्रीभरत जी ने उन भोगों को कैसे देखा? तुलसीदासजी ने लिखा –

मुनि प्रभाउ जब बरत बिलोका। २.२१४.१

मानो संकेत आया, वे सोचने लगे कि ये भोग कहाँ से आ गये? तब उनके ध्यान में आया कि यह तो महर्षि भरद्वाज की तपस्या का परिणाम है। तब वे सोचने लगे कि अगर ये भोग इतने प्रिय होते, तो वे भी इसे भोगते। पर इतने भोगों को प्रगट करने की सामर्थ्य होते हुए भी वे तपस्या में डूबे हुए हैं, इसका अर्थ है कि महत्त्व तप का है, भोग का नहीं। बस, दृष्टि की ही तो बात है। इसका अभिप्राय है, वे समझ गये कि इतनी सामर्थ्य होते हुए भी भोगों को भोगते क्यों नहीं?

वह छोटी लोक कथा आपने सुनी होगी, जिसमें कोई दरिद्र आत्महत्या करने जा रहा था। सनातन गोस्वामी ने कहा, तुम क्यों आत्महत्या कर रहो हो? उसने कहा – महाराज ! मैं परिवार का पालन पोषण भी नहीं कर पाता, तो मैं जीवित रहकर क्या करूँगा? इसे सुनकर सनातन गोस्वामीजी ने कहा – नहीं, तुम्हारी दरिद्रता के निवारण के लिये मेरे पास उपाय है। मेरे साथ आश्रम चलो।

उसे गोस्वामीजो को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस शरीर में केवल एक लंगोटी लगी हुई है, ऊपर से देखें, तो बड़े दरिद्र से लग रहे हैं, पर कहते हैं कि मेरे पास पारस पत्थर है, वह पारस पत्थर तुम्हें दूँगा। तुम लोहे से छुलाकर उसे सोना बना लेना। तुम्हारी दरिद्रता मिट जायेगी। वे उसे आश्रम लेकर गये। लगता तो नहीं था कि इनके पास पारस पत्थर होगा, पर कह रहे हैं तो देख लें। आश्रम पहुँचकर जब सनातन गोस्वामी जी से उसने पूछा कि महाराज, पारस कहाँ है? तो दिखाई पड़ा कि आश्रम की सफाई कर जहाँ पर शिष्यों ने कूड़ा फेंक दिया था, उसी कूड़े में एक पत्थर का टुकड़ा पड़ा था। गोस्वामीजी बोले, उस कूड़े में पारस पड़ा हुआ है। उसने सिर पीट लिया, कहाँ, मैं किसके चक्कर में पड़ गया। पारस इनके पास और वह भी कूड़ा में पड़ा हुआ, कैसी विचित्र बात ये कर रहे हैं ! पर हँसकर सनातन गोस्वामीजी ने कहा कि भाई, तुम्हें संदेह है, तो परीक्षा करके देख लो। उसने एक लोहे का कील लिया, पारस से छुलाया और वह सोना हो गया। वह आनन्द में उन्मत्त हो कहने लगा – मिल गया, पारस मिल गया ! जब वह पारस लेकर लौटने लगा, तो अचानक उसके भीतर विचार का उदय हुआ कि अरे, जिस पारस को पाकर संसार का कोई भी व्यक्ति धनी हो सकता है, सब कुछ पा सकता है, उस पारस को उसने कूड़े में फेंक रखा है। उसने क्या पाया होगा, जिसको पाने के बाद पारस भी उसे कूड़ा लग रहा हो? वह लौटकर आ गया। महाराज, मेरे मन में एक जिज्ञासा है कि जिस वस्तु को पाने के बाद आपको पारस भी कूड़ा लगने लगा, वह क्या है? तब उन्होंने कहा कि उस वस्तु को पाने के लिये इस पारस को नदी में फेंक दो और तब आओ। उसने सचमुच उस पारस के बदले में भक्ति का वह पारस पा लिया, जो व्यक्ति के जीवन को बदल देता है, धन्य कर देता है। उसका अभिप्राय यह है कि योग की एकाग्रता जब संसार के भोगों को इतना आनन्दमय बना देती है, तब वह एकाग्रता अगर ईश्वर से जुड़ जाय, जो संकल्प मात्र से जगत की सृष्टि करते हैं, तो इतनी दृष्टि आते ही व्यक्ति धन्य हो जाता है। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (४९)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न - शंकराचार्यजी ने कहा है कि कर्म द्वारा ज्ञान नहीं होता, किन्तु हम लोग इस संघ में सुनते हैं कि कर्म द्वारा ही ज्ञान होता है। इन दोनों बातों में सामंजस्य कहाँ है?

महाराज - शंकराचार्यजी ने कहा है कि कर्म द्वारा ज्ञान नहीं होता। हममें से कुछ लोग कर्म के विरोध में कुछ कहते ही क्रोधित हो उठते हैं। वे कहते हैं कि कर्म न करने से चित्तशुद्धि नहीं होती, जिसके फलस्वरूप ज्ञान नहीं होता। किन्तु वस्तुत: कर्म से ज्ञान नहीं होता, अपितु कर्मत्याग होने पर बाद में ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान कोई प्राप्तव्य वस्तु नहीं है – ''नित्यसिद्ध कृष्ण-प्रेम कभी नहीं साध्य। श्रवणादि से शुद्ध चित्त में होता उदय।।'' सकाम कर्म करते-करते जब विवेक जाग्रत होता है, (भगवत्प्रसंग) सुनने का सुयोग मिलता है, तब वह जिस परिमाण में कर्म में अग्रसर हुआ रहता है, वहीं से पीछे आने लगता है और निष्काम होने की चेष्टा करने लगता है। क्या करोगे ! इतने दिनों से कर्म करने का वेग तो एक दिन में जायेगा नहीं, इसीलिए प्रयास करते-करते, निष्काम होने की चेष्टा करते-करते जब ''शम: कारणमुच्यते' - कर्मत्याग होता है, तभी उसे ज्ञान होता है। किन्तु कोई-कोई ज्ञान के बाद भी कर्म करते हैं। किन्तु वे लोग लोकशिक्षा के लिये करते हैं। सारांश यह है कि केवल कर्म करने से बन्धन होता है, कर्मफल का भोग होता है, स्वर्ग की प्राप्ति होती है, फिर पुनर्जन्म होता है, इसी प्रकार चक्र चलता रहता है। शंकराचार्य के समय पुरोहित लोग यज्ञ के फलों का भी बहुत प्रचार करते थे। इसलिए इन कर्मकाण्डों के विरोध में आचार्य शंकर को लिखना पड़ा था।

प्रश्न – निष्काम भाव से कर्म करने का प्रयास करने पर कर्म कम होगा तो?

महाराज – कुछ निश्चित नहीं है। मन में सोचा होगा कि मैं स्वयं कुछ नहीं कर रहा हूँ। ज्यों-ज्यों भार बढ़ेगा, त्यों-त्यों करूँगा, धनी व्यक्ति के घर की दासी की तरह। कर्म मेरा लक्ष्य नहीं है, मेरा लक्ष्य है ज्ञानप्राप्ति करना। शिष्य गाय चराने के लिये गया, किन्तु गाय चराना उद्देश्य नहीं है, उद्देश्य है ज्ञानप्राप्ति।

प्रश्न – मैं भी तो वही समष्टि हूँ।

महाराज - नहीं, उससे इष्ट-बुद्धि नहीं रहती। मैं एक किरण मात्र हूँ।

कल मैंने काँच के बोतल की एक उपमा बताई थी, बताओ तो।

सेवक – एक बोतल को जल में डुबाकर रखा। उससे तालाब का जल ही अलग होकर बोतल का जल हो गया, मानो समष्टि चैतन्य व्यष्टि हो गया।

महाराज – उस बात का चिन्तन करते-करते समझ में आया कि बोतल की उपमा ठीक नहीं हुई। किन्तु यदि उपमा कही जाय, तो यह होगी – चरवाहे का पुत्र क्रमश: गृहस्थ बना, राजा की कृपा-दृष्टि उस पर पड़ी, उसे आधा राज-पाट और राजकन्या की प्राप्ति हो गई, अन्त में राजा के मरने के बाद वह राजा हो गया। इसमें जो चरवाहा है, वही उन्नत होकर राजा हो गया, चरवाहे का नाश नहीं हुआ, उसकी ही उन्नति हुई।

आत्मज्ञान में अपने 'मैं' पर मन एकाग्र किया जाता है और शुद्धाभक्ति में किसी व्यक्ति-विशेष पर मन एकाग्र किया जाता है। उसके बाद विशिष्टाद्वैत है। वहीं जीव के दुख से बहुत पीड़ा होती है। उसके बाद अद्वैत है। जिनकी शुद्धाभक्ति होती है, वे जिनका चिन्तन करते हैं, उनका ऐश्वर्य आदि कुछ भी नहीं चाहते, वे केवल यही चाहते हैं कि कौन उनकी प्रियतम वस्तु है, उनको और कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वे अन्य किसी की निन्दा भी नहीं करते।

अवतार मानो सिंह के मुखौट से गिरते हुए छत के जल के समान है। परब्रह्म श्रीरामकृष्ण रूप आवरण के माध्यम से अपनी वाणी का प्रचार करते हैं, जो तीसरी मंजिल का समाचार एक मंजिल के लोगों को बता सकते हैं।

एक व्यक्ति ने कहा था कि मैं श्रीरामकृष्ण को परब्रह्म मानता हूँ। किन्तु प्रश्न यह है कि परब्रह्म के सम्बन्ध में धारणा नहीं रहने से फिर क्या माना जाय? देखो, ज्ञान-विचार को छोड़कर भक्त तो हो सकते हो, किन्तु संन्यासी नहीं हो सकते। श्राद्ध किया है, किन्तु उसे एक साधारण क्रिया समझना। मैं देह-मन-बुद्धि नहीं हूँ, यह नहीं जानने से माँ-बाप का 'मैं पन' कैसे जायेगा? जो रजोगुणी हैं, वे यदि यह समझ जाएँ कि संसार दुखमय हैं, तब उन्हें इसका सुधार करना होगा। ज्ञानी ज्ञान का विचार करेगा ।

१-११-१९६०

बहरमपुर से कई भक्त आए हैं। परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। एक भक्त ने कहा कि सोमवार शिव का, मंगलवार माँ का और बुधवार ठाकुर का दिन है।

महाराज – कहता है कि बुधवार ठाकुर का दिन है, हम यदि ठाकुर का भी एक दिन समझ लें, तब तो हम लोगों का भी एक दल हो जायेगा। हम सबके साथ मिल-जुलकर अपनी स्वतंत्रता बनाये रखेंगे। यही ठाकुर की विशिष्टता है।

ठाकुर को सिद्ध पुरुष नहीं कहा जा सकता। कामिनी-. कांचन का देह-मन-वचन से ऐसा त्याग ! सिद्ध पुरुष में यह संभव नहीं है। फिर उन्हें भगवान ही क्यों कहें, सभी कार्य तो मनुष्यों की तरह हैं ! इसीलिए वे हैं अवतार – आचार्य – नर रूपी नारायण ।

कितने प्रकार के जीव हैं, बताओ तो? चार प्रकार के जीव हैं – नित्य, मुक्त, मुमुक्षु और बद्ध। चार प्रकार के दूसरे जीव भी हैं – बुभुक्षु – जो केवल शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति से ही संतुष्ट रहते हैं, घोर तमोगुणी होते हैं, किसी भी चीज में कोई उत्साह नहीं है। चिकीर्षु – जो कुछ करना चाहता है। व्याकुल होकर प्राणपण से प्रयत्न करता है। वह रजोगुणी है। जिज्ञासु – बुद्धि है। एम.ए., डी.लिट. उत्तीर्ण होकर बुद्धि का विकास करना चाहता है । किन्तु विवेक नहीं जागा है। मुमुक्षु – बुद्धि का विकास होते-होते जब नित्य-अनित्य का विवेक जागृत होता है, तब मुमुक्षु होता है।

जिसका हेड, हैंड एण्ड हार्ट (मस्तिष्क, हाथ और हृदय) तीनों ही उन्नत नहीं हैं, वह ठीक-ठीक धार्मिक नहीं हो सकता। श्रीरामकृष्ण के तत्त्व को नहीं मानने से हम लोगों को विश्वास नहीं होता है। मुझसे एक व्यक्ति ने कहा था, ठाकुर के शिष्यों में एक बात देखोगे, उन्हें जो कोई भी कार्य क्यों न दे दो, देखोगे कि वे सबमें समान रूप से प्रसन्न कुशल हैं।

द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत का सम्मिलन नहीं दिखाई पड़ता। द्वैत में जहाँ तक जाया जाता है, गोपाल-की-माँ इसका एक उदाहरण हैं। वे द्वैत के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझी थीं। बाबा (स्वामी अखण्डानन्द) विशिष्टाद्वैत हैं, जीवों के दुख से उनका हृदय विदीर्ण हो जाता था। अद्वैत तो सबको ही था। स्वामी रामकृष्णानन्द क्या दिखाकर गए हैं?

२-११-१९६०

प्रश्न - हम संसार में दो प्रकार की चीजें देखते हैं, एक है जीव, जिनमें चेतना है और दूसरा जड़, जिनमें चेतना नहीं है, जैसे ईंट इत्यादि। किन्तु ज्ञानी, जड़-चेतन दोनों को ही चैतन्यमय देखते हैं। क्यों?

महाराज - दोनों को देखने का माध्यम या उपाय अलग होने के कारण हम ऐसा देखते हैं। एक दृष्टि से हमें दो तरह का लगता है। ज्ञानी का माध्यम अलग है। तुम्हारे सामने यह मछली है, तुम इसके भीतर चेतना को, प्राण की क्रिया को जितना समझ सकते हो, ये जीव जन्तु (मछली आदि) उतना नहीं समझ सकते हैं, क्योंकि तुम्हारी दृष्टि सूक्ष्मतर है। प्रतिदिन सुबह मैं दृष्टिशक्ति की अल्पता के कारण डॉक्टर को दो व्यक्ति के रूप में देखता हूँ !

ध्यान करते-करते प्रथमत: यह दिखाई पड़ता है कि मैं इस देह-मन-बुद्धि का साक्षी हूँ, तत्पश्चात दिखाई पड़ता है कि मैं सभी जीवों के देह-मन-बुद्धि का साक्षी हूँ। इसी अवस्था को हम भगवान कहते हैं। तदुपरान्त दिखाई पड़ता है कि जीव जगत चैतन्यमय है। तत्पश्चात क्या रहता है, उसे मुख से कहा नहीं जा सकता। सब निर्विकल्प समाधि के बाद क्रमश: एक-के-बाद-एक आता है। समाधि से नीचे उतरने के बाद जगत विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है। (**क्रमशः**)

स्वदेश तथा विश्व के लिए भारत का सन्देश

स्वामी नित्यस्वरूपानन्द

(गतांक से आगे)

भारत की प्राणशक्ति धर्म की सहायता से ही राष्ट्रीय जीवन में परिवर्तन आएगा

आध्यात्मिक एकत्व, जो भारत का वैशिष्ट्य और उसकी प्राणशक्ति है, की नींव पर ही भारत प्रत्येक क्षेत्र में अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँच सकता है। भेदभाव तथा विशेषाधिकार की सारी भावना आध्यात्मिक एकत्व की उपलब्धि से दूर होगी और समस्त विचारों, भावनाओं एवं क्रियाकलापों को त्याग तथा सेवा के पथ पर परिचालित करना होगा। यह चेतना भारतीय मनोवृत्ति को पूर्णत: बदल देगी और जो आदर्श सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जीवन को प्रभावित कर रहे हैं, उन संकीर्ण आदर्शों को उनके सीमित दायरे से मुक्त कर देगी। भारत के अखण्ड अतीत और अखण्ड जीवन के बारे में अज्ञानता जिस तामसिकता का स्रोत है, उससे यह आध्यात्मिक एकत्व की उपलब्धि ही मनुष्य को मुक्ति दिला सकती है। यह अनुभूति भारतवासी को एक अखण्ड नागरिकता के बोध की ओर, तथा एक अखण्ड सार्वजनीन लक्ष्य की ओर ले जा सकती है। इसके अतिरिक्त यह बोध सभी लोगों को संयुक्त उत्तरदायित्व के प्रति जागरुक करेगा और उसे स्वीकार करने की ओर उन्मुख करेगा। यह चेतना उनके मन में सम्मिलित उद्देश्यपूर्ण मिलन के सूत्र की सृष्टि करेगी तथा एक सूत्र में ग्रथित व्यावहारकि जीवन का ताना-बाना प्रस्तुत करेगी। इसके फलस्वरूप उन्हें एक अनन्त व्यापक दृष्टि मिलेगी, उस दृष्टि से वे निरन्तर अनन्त की ओर अग्रसर होते रहेंगे। यह चेतना उनके जीवन और कर्म में अशेष शक्ति एवं अदम्य विश्वास लायेगी, जिससे पुन: एक ऐसे वातावरण की सृष्टि होगी, जो सार्वभौमिक प्रगति और सर्वोदय में सहायक होगी। यह बोध मानव-मानव में, वर्ग-वर्ग में, सम्प्रदाय-सम्प्रदाय में, धर्म-धर्म में एकता, मेल और समन्वय लाएगा। आध्यात्मिक एकत्व की उपलब्धि से एक ऐसे दृढ़ नींव की स्थापना होगी, जो देश के विभिन्न श्रेणी के लोगों में वास्तविक सहधर्मिता और समन्वय की सृष्टि कर सकेगी और उन सबको एक अखण्ड भारतीय राष्ट्र के रूप में शान्तिपूर्वक एक साथ निवास करना सिखा सकेगी।

धार्मिक स्वाधीनता का मौलिक अधिकार विश्वशान्ति और विश्व प्रगति की नींव के रूप में आध्यात्मिक एकत्व और सर्वधर्म-समन्वय की स्थापना करने में समर्थ है

भारतीय संविधान के अनुसार अपना धर्मपालन करने की स्वाधीनता प्रत्येक भारतवासी का मौलिक अधिकार है। वहाँ लिखा है – 'प्रत्येक नागरिक अपने स्वतन्त्र विचार और विवेक के अनुसार अपने स्वभावगत धर्म का ग्रहण, पालन और प्रचार कर सकेगा।' यह मौलिक अधिकार सार्वभौमिक एकत्व और सर्वधर्म-समन्वय के साथ पूर्णत: समीचीन है। हमने पहले ही कहा है, धर्म एक ही है, केवल मतवाद तथा अभिव्यक्ति की प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न हैं। इसीलिये लोग भी उस पारमार्थिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपने स्वभाव एवं रुचि के अनुसार अलग-अलग मत, पथ एवं अभिव्यक्ति के विभिन्न पद्धतियों का सहारा लेते हैं। भारत युग-युग से इस शाश्वत सत्य की घोषणा करते आया है। तभी तो अर्नाल्ड टायन्बी लिखते हैं – ''केवल इस भावधारा में ही हमें एक ऐसे मनोभाव एवं चेतना के दर्शन होते हैं, जो सम्पूर्ण विश्व को कुटुम्ब में परिणत कर सकते हैं।'' धर्म-पालन की स्वाधीनता का जो मौलिक अधिकार प्रत्येक नागरिक के लिये स्वीकृत है, उससे प्रत्येक नागरिक को विचार की वह स्वाधीनता प्राप्त है, जिसकी सहायता से वह अपने स्वभाव तथा रुचि के अनुसार ईश्वरोपलब्धि के लिये अपने अनुकूल धर्मपथ का चुनाव कर सकता है। मनुष्य के वास्तविक दिव्य आत्मतत्त्व का विकास ही जाने या अनजाने सभी धर्मों की भित्ति है तथा वही भौतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में मानव-जाति के समग्र इतिहास की एकमात्र व्याख्या है, क्योंकि यह सार्वभौम चेतना ही मानव-जीवन के विभिन्न स्तरों में अपने को अभिव्यक्त करती है। सब धर्मों की यह विश्वजनीन नींव ही धार्मिक स्वाधीनता के मौलिक अधिकार का मूल सूत्र है एवं इसलिये उसकी पूर्व शर्त है। इसी ने धार्मिक स्वाधीनता को एक विशेष रूप और अपूर्वता प्रदान की है। धार्मिक स्वाधीनता के मौलिक अधिकार ने इसी प्रकार विश्वव्यापी प्रासंगिकता और समस्त मानवों की स्वीकृति का अधिकार प्राप्त किया है। इस धार्मिक स्वाधीनता के मौलिक अधिकार ने जिस धर्मसमन्वय

और आध्यात्मिक एकत्व की स्थापना की है, वह सार्वभौम भ्रातृत्व, विश्वशान्ति तथा विश्व प्रगति की वास्तविक नींव है।

धार्मिक शिक्षा पर संवैधानिक निषेधाज्ञा आत्मविरोधी है

धार्मिक स्वाधीनता का मौलिक अधिकार संविधान में स्वीकृत है, अत: धर्म-समन्वय की स्थापना के लिये इस संवैधानिक धर्म-समन्वय के राष्ट्रीय आदर्श को सार्थक करने में सहायक या अनुकूल शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व भी अनिवार्यत: भारत के ऊपर आ जाता है। किन्तु शिक्षण संस्थानों में धर्म-शिक्षा पर संवैधानिक प्रतिबन्ध होने के कारण भारत की आध्यात्मिक एकता, जो उसकी विशिष्ट प्राणशक्ति है, के बारे में चेतना जगाने का महत्त्व पूरी तरह उपेक्षित हो गया है। यह संवैधानिक प्रतिबन्ध सर्वधर्मों के समस्त मतों द्वारा सम्मत सार्वभौमिक आधार का विरोधी है। यह प्रतिबन्ध वस्तुत: धर्म के यथार्थ स्वरूप के सम्बन्ध में लागू नहीं हो सकता। वह केवल धर्म के छिलके या बाह्य आवरण पर ही प्रयुक्त होगा, उसके गूदे या सार पर नहीं। वह उसके आत्मस्वरूप पर नहीं, वरन् उसके बाह्य रूप पर ही लागू होगा। आध्यात्मिक एकत्व ही वास्तविक धर्म है। यह एकत्व राष्ट्रीय, आध्यात्मिक एकत्व की ओर ले जाता है। धर्मशिक्षण पर प्रतिबन्ध धर्म की गौण बाहरी प्रकृति के बारे में ही प्रयुक्त हो सकता है, जिसके मुखौटे को हम वास्तविक धर्म समझकर भूल करते हैं। इसके कारण समाज में अनेक संघर्षों और संकटों की सृष्टि होती है तथा राष्ट्रीय एकता को आघात पहुँचाती है। धार्मिक एकता और धर्म-समन्वय के सार्वभौमिक सत्य को कभी शिक्षा से अलग नहीं किया जा सकता। वैसा करते ही राष्ट्रीय जीवन के बुरे दिन आ जाएँगे। भारतीय इतिहास में बारम्बार ऐसे उदाहरण मिलते हैं तथा अब भी मिल रहे हैं।

सम्पूर्ण मानव-जाति को आध्यात्मिक बनाना ही भारत का चिरन्तन व्रत है

यह बात अब स्पष्ट तथा निश्चित रूप से स्वीकार्य है कि भारत को यदि अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रखना है तथा वास्तविक प्रगति करनी है, तो शिक्षा, जो वास्तविक उन्नति की प्राथमिक आवश्यकता है, को सभी स्तरों में भारतीय आध्यात्मिक आदर्श के ऊपर स्थापित करना होगा। इससे ही भारत स्वदेश के सभी स्तरों में एकता, समता और संगति की रक्षा कर सकेगा तथा प्रगति के शिखर पर आरूढ़ हो सकेगा। केवल तभी भारत विश्व की उन्नति और सभ्यता को अपनी देन से समृद्ध कर सकेगा और यह कार्य वह युग-युग से करता आया है। भारत की इसी देन को अर्नाल्ड टायन्बी ने 'मानव मुक्ति का एकमात्र पथ' कहा है। यही भारत का चिरन्तन व्रत है। स्वदेश में इस आदर्श का क्रियान्वयन तथा विश्व को इसका दान ही भारत के चिरकालीन अस्तित्व का प्रमाण है । तभी तो स्वामी विवेकानन्द ने उदात्त-कण्ठ से कहा है – ''सम्पूर्ण मानव-जाति को आध्यात्मिक करना ही भारतवर्ष का जीवन व्रत है, यही उसके चिर जीवन संगीत का मूल सुर है, उसके अस्तित्व का मेरुदण्ड है, उसकी सत्ता की एकमात्र भित्ति है और उसके अस्तित्व का एकमात्र तात्पर्य है। चाहे तातारों का शासन रहा हो, चाहे तुर्कों का, मुगलों का शासन रहा हो या अँग्रेजों का, उसकी जीवन-धारा इस पथ से कभी विचलित नहीं हुई।''

एक 'विश्व-सभ्यता-केन्द्र' की स्थापना भारत का वर्तमान उत्तरदायित्व है और यही जीवन के लक्ष्य को सफल करने में सहायक होगा

विश्व-सभ्यता-केन्द्र के लिये अब भारत को अग्रणी होना चाहिये। इस केन्द्र के बारे में अँग्रेजी में लिखित लेखक के Human unity and education for world civilization (1978) तथा The World Civilization Centre (1983), इन दो पुस्तकों में विस्तार से चर्चा हुई है। विश्व-सभ्यता-केन्द्र के भारतीय विभाग की प्रधानत: द्विविध भूमिका होगी – अन्तर्राष्ट्रीय और स्वदेश। अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका के अन्तर्गत एक अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षामूलक कार्य प्रणाली होगी और स्वदेशी भूमिका के अन्तर्गत रहेगी एक व्यापक, अखण्ड भारतीय शिक्षामूलक कार्य प्रणाली। यह स्वदेशी भूमिका भारत की अपनी विशिष्ट राष्ट्रीय भित्ति पर स्थापित भारतीय संस्कृति, समाज और अर्थनैतिक जीवन में एक नवीन अध्याय का विकास करने के लिए पूरी तरह से नियोजित होगी।

भारत की भूमि पर विश्व सभ्यता केन्द्र की स्थापना भारत का ही राष्ट्रीय कर्त्तव्य और दायित्व है, इसके लिए भारत अपने तथा सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख उत्तरदायी है। यह केन्द्र भारत को इस बात का अद्भुत सुअवसर प्रदान करेगा कि

वह विश्व को अपनी विशिष्ट सम्पदा प्रदान करे तथा इस देन के माध्यम से भारत अपना जीवनोद्देश्य सफल करेगा। इस प्रकार अन्यान्य राष्ट्र भी भारत की इस देन के मुख्य तात्पर्य के प्रति जागरुक होंगे। इस जागरुकता से भारत एवं अन्य देशों के बीच परस्पर निर्भरशीलता का बोध पैदा होगा, आपस में सहयोग एवं आत्मीयता का भाव विकसित होगा तथा एक-दूसरे के प्रति श्रद्धा एवं आदान-प्रदान के माध्यम से सम्पूर्ण जगत में समृद्धि, शान्ति और प्रगति की नींव पड़ेगी। **(समाप्त)**

सत्य-नीतिशतकम्

सत्येन्दु शर्मा

पातु मृत्युञ्जयः सदा नीतिज्ञान् सज्जनांस्तथा।
तनोतु विश्वबन्धुत्वं सर्वेषाञ्च शुभं भवेत्।।

– मृत्युंजय शिव सदा नीतिज्ञ सज्जनों की रक्षा करें और विश्वबन्धुत्व का विस्तार करें, सबका मंगल हो।

मैथिली स्वार्थलोभेन रावणेन हृता खलु।
लोभः संकटद्वाराणि तस्माल्लोभं परित्यजेत्।।

– मैथिली सीताजी स्वर्णमृग के लोभ के कारण अपहृत हुईं। लोभ संकटों का द्वार है, इसलिये लोभ से बचना चाहिये।

गुणा लोकेषु पूज्यन्ते न वंशो न वयस्तथा।
कपिवंशसमुत्पन्नो महावीरः सुपूज्यते।।

– समाज में गुणों की पूजा होती है, न वंश की और न उम्र की। बन्दरों के वंश में उत्पन्न होकर भी हनुमान अपनी महान वीरता के कारण पूजे जाते हैं।

श्रमेण द्रविणं विद्या सुखं सर्वमवाप्यते।
श्रमं विना न साफल्यं श्रमो हि सिद्धिकुञ्जिका।।

– परिश्रम से धन, विद्या, सुख, सब कुछ पाया जा सकता है। परिश्रम के बिना सफलता नहीं मिलती। वस्तुतः परिश्रम ही सफलता की कुंजी है।

यदा कश्चिन्नरोऽधीते एको भवति साक्षरः।
स्त्रियां तु पठितायां तत्कुलं भवति शिक्षितम्।।

– जब कोई एक पुरुष पढ़ता है, तब केवल एक व्यक्ति ही साक्षर बनता है। किन्तु एक स्त्री के पढ़ने पर उसका पूरा वंश शिक्षित हो जाता है।

यही धर्म का सार

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

भाग्य भरोसे मत रहो जग में कर्म प्रधान।
कर्महीन ही को यहाँ मिलता कष्ट महान।।
पता न पल का भी हमें कल की करते बात।
क्या जाने किस पल कहाँ काल करे आघात।।
बिना मनों के मेल के व्यर्थ जनों का मेल।
ज्योति जगे उस दीप में जिसमें बाती तेल।।
नभ में उड़ती है कभी कहने को है धूल।
ऊँचे उठते हैं सभी समय मिले अनुकूल।।
समय परम अनमोल है समय न करिये व्यर्थ।
मान समय का जो करे बनता वही समर्थ।।
बिना त्याग-तप के नहीं मिलता जीवन स्वाद।
धरती बनती रसवती तपने के ही बाद।।
भव की चिन्ता मत करो फल केवल हा-हाय।
चिन्ता प्रभु की कीजिये चिन्तामणि बन जाय।।
तरुवर ! धैर्य न त्यागना समय देख प्रतिकूल।
पतझर बाद बसन्त में फिर होंगे फल-फूल।।
यही धर्म का मर्म है यही धर्म का सार।
जो अपने प्रतिकूल हो वह न करो व्यवहार।।

जय माँ दुर्गे !

जितेन्द्र कुमार तिवारी

शक्ति बिना शिव स्पंदनहीन जय माँ दुर्गे !
सारी शक्ति तुम्हीं में लीन जय माँ दुर्गे !!
असुरों का उत्पात बढ़ा तो तुमने रोका,
सब देवों में तुम ही प्रवीण जय माँ दुर्गे !
दुष्टदलन को तुमने अपना लक्ष्य बनाया,
सुजनों का भय किया है क्षीण जय माँ दुर्गे !
तुम हो रक्षक निर्बल जन के दुखी जनों के,
दया तुम्हारी पाते दीन जय माँ दुर्गे !
राक्षस तुमसे थर-थर काँपें शक्तिमयी माँ,
और हैं होते शक्तिविहीन, जय माँ दुर्गे !

आध्यात्मिक जिज्ञासा (११)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – स्वामीजी के पड़ोसी उन्हें अहंकारी समझते थे। किन्तु जीवनीकार कहते हैं, यह आत्मविश्वास है। self-confidence और self-assertion, इन दोनों में क्या अन्तर है?

महाराज – किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में केवल उसकी वाणी और आचरण के द्वारा निर्णय नहीं किया जा सकता। स्वामीजी यदि अहंकारी होते, तो दूसरों को तुच्छ बनाते। किन्तु वे वैसा नहीं करते थे। वे कहते थे, सब में वही ब्रह्म विद्यमान है। इसलिए यह अहंकार की वाणी नहीं है। इन सभी दृष्टिकोणों से देखना होगा। स्वामीजी ने अपने गुरुभाइयों को डाँटा है। उन्होंने शरत महाराज को कहा – ''दो, दो, रख दो, एक छटाक की बुद्धि। खर्च मत करना ब्याज बढ़ेगा।'' जिनको सम्पूर्ण संघ का भार देकर सचिव बनाकर जायेंगे, उनको उन्होंने ये बात कही थी। उसके बाद दूसरे गुरुभाइयों को तो ऐसे कितनी बार डाँटे हैं। शिष्यों की तो कोई बात ही नहीं है। किन्तु प्रेम कितना था ! इसलिये इस प्रेम के द्वारा, उसी पृष्ठभूमि से विचार करना होगा।

प्रश्न – आत्मप्रशंसा कैसे समझेंगे? इसे दूर करने का क्या उपाय है?

महाराज – दूसरे के अहंकार को देखने के बदले अपने में अहंकार है कि नहीं, यह विचार करो। अपने में अहंकार है कि नहीं, ऐसा विचार करने से अहंकार नहीं रहेगा। वह भाग जायेगा। अपने बारे में विचार करने पर देखोगे, कई विषयों में तुम दूसरों से छोटे हो। इसलिए अहंकार रखने का स्थान नहीं पाओगे, तब अहंकार नहीं आ सकेगा।

प्रश्न – ठाकुर कहते हैं, ''लोग कितना जप-तप करते हैं, किन्तु विश्वास नहीं है।'' इसका क्या अर्थ है?

महाराज – विश्वास इसलिए नहीं है कि इतना करके भी 'पाप' 'पाप' कहते हैं। इतना जप-तप करके भी 'पापी' 'पापी' कहते हैं। नाम में विश्वास रहने पर अपने को 'पापी' नहीं कहते। इस नाम-जप से हमारी अपवित्रता दूर होगी, यह विश्वास रहना चाहिए। उनके नाम से ये सारी अपवित्रता दूर हो जायेगी।

''नामेते काल-पाश काटे, जटे ता दियेछे रटे,
आमरा तो सेइजटेर मुटे, हयेछी आर हबो कार।
नामरइ भरोसा केवल श्यामा गो तोमार।।''

– नाम से ही काल-पाश कटता है। हे जटाधारिणी माँ, तुमने उसे ही हमें रटने, जपने को दिया है। हम तो उसी माँ की मुट्ठी में हैं। हम किसी दूसरे के कैसे होंगे ! हे माँ श्यामा ! अब केवल तुम्हारे नाम का ही आश्रय है, तेरे नाम पर ही विश्वास है !

एक राजा को ब्रह्महत्या का पाप लगा। ब्रह्महत्या का पाप कैसे दूर होगा, यह विधि-विधान जानने के लिये वह एक ऋषि के पास गया। ऋषि घर में नहीं थे। उनका लड़का था। राजा ने कहा – ''तुम्हीं उपाय बता दो।''

लड़के ने कहा – ''तीन बार राम-नाम कहिए, जितने पाप हैं, सभी चले जायेंगे।'' उसके बाद जब ऋषि वापस आ गये, तब लड़का ऋषि को कहता है – ''एक राजा आये थे। उनसे ब्रह्महत्या का पाप हुआ था। उसका प्रायश्चित्त कैसे होगा, उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने उन्हें तीन बार राम-नाम लेने को कह दिया।'' ऋषि ने कहा – क्या कहा रे? एक रामनाम में करोड़ ब्रह्महत्या के पाप का नाश हो जाता है। तुमने उनसे तीन बार राम नाम कराया? इतना विश्वास कि एक बार राम-नाम कहने से करोड़ ब्रह्महत्या के पाप का हरण हो जायेगा। इसे विश्वास कहते हैं।

प्रश्न – महाराज, एक और प्रश्न पूछता हूँ। हमलोग हमेशा सुनते या कहते हैं – भगवानलाभ, भगवानलाभ – ईश्वरप्राप्ति। ईश्वरप्राप्ति की सभी लोग एक-एक प्रकार से व्याख्या करते हैं या समझना चाहते हैं। जैसे कोई अनाहत ध्वनि सुनने और कोई देवी-देवताओं की मूर्ति का दर्शन या ज्योतिदर्शन से समझाना चाहते हैं।

महाराज – अनाहत ध्वनि सुनने को कोई भगवानलाभ – ईश्वरप्राप्ति नहीं कहता है।

– क्या देखकर या कैसे समझेंगे कि यह भगवानलाभ है, या भगवानलाभ से हमलोग क्या समझेंगे?

महाराज – भगवानलाभ ठीक-ठीक समझने के लिये यह जानना कि जैसे भगवान शुद्ध, पवित्र और सर्वगुण सम्पन्न हैं, जो उन्हें प्राप्त करेगा, वह भी वैसे ही शुद्ध, पवित्र और सर्वगुण सम्पन्न होगा। उसे अहंकार नहीं होगा। अभिमान नहीं रहेगा। भय नहीं रहेगा और सिद्ध पुरुषों के जो ये सब लक्षण हैं, वे उसमें प्रस्फुटित हो जायेंगे। यही इसका तात्पर्य है।

प्रश्न – हम सभी लोग अपनी क्षमतानुसार इस पथ पर चलने का प्रयास कर रहे हैं। हमलोग सही मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं या नहीं, इसे समझने का मापदण्ड क्या है?

महाराज – पहली बात है विश्वास। गुरु और वेदान्त वाक्य में विश्वास। अर्थात् गुरु और शास्त्र-वाक्य में विश्वास। यह पहली बात है। दूसरी बात है आन्तरिक चेष्टा। तभी आगे बढ़ना सम्भव है। ये सब हो रहा है कि नहीं कैसे समझोगे? भागवत में एक श्लोक है – जो भगवान के शरणागत होता है, उसकी ये तीन चीजे एक साथ होती हैं – '**भक्ति विरक्ति भगवत्प्रबोध:**।' भगवान में प्रेम बढ़ेगा। भगवान के अतिरिक्त अन्य विषयों से वैराग्य होगा और भगवत्स्वरूप के सम्बन्ध में संशय दूर होगा। जैसे-जैसे व्यक्ति आगे बढ़ेगा, ये तीन चीजें समान रूप से उसमें प्रकाशित होंगी। वह श्लोक है –

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैष त्रिक एककाल :।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्।।

(भागवत, ११-२-४२)

एक उदाहरण दिया है। एक व्यक्ति को भोजन नहीं मिलता है। भोजन नहीं करने के कारण उसे भूख से कष्ट होता है, दुर्बलता का अनुभव करता है और मानसिक अशान्ति होती है। जब उसे भोजन दिया जाता है, तब एक-एक ग्रास से उसका दुख दूर होता है। अपने शरीर में उसे शक्ति मिलती है और उसकी मानसिक अशान्ति, अतृप्ति दूर होती है। इसी प्रकार जो लोग भगवान के शरणागत होते हैं, उनकी 'भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोध:', ये तीनों चीजें एक साथ होती हैं।

प्रश्न – महाराज ! एक भजन है –

''राजराजेश्वर देखा दाओ।
करुणा भिखारी आमी करुणानयने चाओ।।''

इसका क्या अर्थ है?

महाराज – यदि वे राजराजेश्वर नहीं होते, तो उनसे याचना करने से क्या लाभ है? यदि वे करुणामय नहीं होते, तो हम पर करुणा कहाँ से करेंगे? इसलिए ऐसी प्रार्थना की जाती है।

– जो लोग ईश्वर में विश्वास नहीं करते, जिनकी ईश्वर में आस्था नहीं है, उनलोगों से ये सब बातें कहने का कोई औचित्य नहीं है।

महाराज – वे सब कुछ कहते भी नहीं हैं। जो लोग ईश्वर को ही नहीं मानते, तो क्या दयामय और करुणामय !

– जो ईश्वर को नहीं मानता, वह यदि प्रश्न करे कि क्यों तुम ईश्वर को दयामय कहते हो?

महाराज – वह उत्तर देगा, हम लोग ईश्वर की दया पर निर्भर करते हैं, इसलिए उन्हें दयालु कहते हैं। जानकर नहीं बोलते। प्रार्थना करते हैं। विश्वास रहने पर दयालु क्यों कहेंगे? मुंडमाला पराये तोमाय, भये फिरे चाय, नाम देय दयामयी।'' – मुंडमाल पहनी हुई देखकर डर से वापस चला जाना चाहता है, लेकिन दयामयी कहता है।

– क्या किसी युक्ति से समझाया नहीं जा सकता?

महाराज – युक्ति यह है, हम लोग जो चाहते हैं, उसी गुण से उन्हें (ईश्वर को) विभूषित करते हैं।

– अर्थात् मनोभाव। हमलोगों का जैसा मनोभाव है, उसे ही ईश्वर का गुण कह रहे हैं, तब तो हमलोग ईश्वर को जो दयालु कहते हैं, या अन्य जो गुण हैं, वे वास्तविक नहीं हैं, सत्य नहीं हैं।

महाराज – जिसने ईश्वर की अनुभूति की है, वह बता पायेगा। जिसने ईश्वर की अनुभूति नहीं की, वह कैसे कहेगा कि वे कैसे हैं? इसलिए वह भी दयालु कहता है, क्योंकि वह भी दया का प्रार्थी है। सिक्खों ने ठाकुर से कहा – ''भगवान दयामय हैं।'' ठाकुर कहते हैं – ''दयामय क्यों?'' उनलोगों ने कहा – ''उन्होंने हमारे लिये यह किया है, वह किया है। ठाकुर कहते हैं उनकी सन्तान का वे पालन करेंगे, इसमें क्या वीरता है?'' **(क्रमशः)**

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (३)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा

दैनिक जीवन में शान्ति प्राप्त करने के लिये व्यावहारिक सूत्र

आज का मनुष्य सचमुच चाहता तो है शान्ति, परन्तु दैनिक जीवन में ऐसी-ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं कि स्थायी शान्ति की बात तो दूर रही, कुछ समय के लिये भी उसे शान्ति नहीं मिलती। कई बार चारों ओर से दबोच दे ऐसी परिस्थिति बन जाती है, कहीं रास्ता नहीं दीखता, धन्धे में पार्टनर धोखा देकर सम्पत्ति हड़प ले, या संतान उच्छृंखल होकर गलत मार्ग पर जा रही हो अथवा जिसे प्रेम में सर्वस्व अर्पण कर दिया हो, ऐसा प्रेमी मुँह फेर ले, दूसरों का भला किया हो, तो भी उसकी ओर से निन्दाओं की वर्षा हो रही हो, नौकरी में ईमानदारी होने के कारण सहकर्मी और अधिकारियों के क्रोध का शिकार बने हों, ऐसी कई बातें दैनिक जीवन में होती रहती हैं, जो समग्र चेतना को डगमगा देती हैं, मन को अशान्त कर देती हैं। ऐसे प्रसंगों में मन को स्थिर और शान्त रखने की कला को जाननेवाला मनुष्य जीवन के युद्ध में विजय प्राप्त करता है। इस विजय को प्राप्त करने के लिये जीवन की जटिल परिस्थितियों में शान्ति किस प्रकार बनाए रखनी चाहिए, उसके लिये अनेक सूत्र हैं, उनमें से कुछ मुख्य सूत्र ये हैं –

१. चिन्ता की औषधि – चिन्तन

मनुष्य को अशान्त करने वाला महत्त्वपूर्ण कारण है चिन्ता। छोटे-बड़े सभी को कोई-न-कोई चिन्ता सताती ही रहती है। किसी को धन की चिन्ता है, तो किसी को तन की चिन्ता है। किसी को भविष्य की चिन्ता है, तो किसी को सम्मान की। इस प्रकार मनुष्य के मन में चिन्ता हमेशा बनी ही रहती है, वह उसे खाती रहती है। इसलिये कहा जाता है कि चिता से भी चिन्ता अधिक खतरनाक होती है, क्योंकि चिता तो मरे हुए को जलाती है, जबकि चिन्ता तो जीवित व्यक्ति को ही जलाती रहती है। जब चिन्ता से मनुष्य निरन्तर जल रहा हो, तो उसे शान्ति कैसे मिलेगी? परन्तु जब मनुष्य चिन्ताग्रस्त होता है, तब उसे सबसे अधिक शान्ति की आवश्यकता होती है, तो ऐसी परिस्थिति में शान्ति किस प्रकार प्राप्त करें?

चिन्ता पर चिन्तन करना – किसी भी परिस्थिति के विषय में चिन्ता करने से तो दुख और अशान्ति बढ़ती ही है, किन्तु उस पर चिन्तन करने से चिन्ता कम होती जाएगी। चिन्ता पर चिन्तन करना, मनन करना, उसका विश्लेषण करना, विश्लेषण करने से स्पष्ट रूप से जान सकते हैं कि हम जो चिन्ता कर रहे हैं, वह बिलकुल व्यर्थ है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हमारी ८० प्रतिशत चिन्ताएँ केवल काल्पनिक ही होती हैं। काल्पनिक चिन्ताओं से दुखी होना तो मूर्खता ही मानी जाएगी। जिसका अस्तित्व ही नहीं है, उसके विषय में चिन्ता करना मूर्खता का लक्षण है। यह बोध जाग्रत होने के बाद चिन्ता चली जाती है। मानसिक चिन्ता से मुक्त होने के बाद समस्याएँ हल्की हो जाती हैं या वह ध्यान देने योग्य नहीं लगतीं।

कभी-कभी ऐसी परिस्थिति खड़ी हो जाती है कि व्यक्ति को ऐसा लगता है, मानो वह चारों ओर से समस्याओं से घिर गया गया हो। तब वह बहुत चिन्ता करने लगता है। उदाहरण के रूप में एक व्यक्ति वर्षों से जहाँ काम करता है, वह मिल बन्द हो जाती है, उसकी आय बन्द हो गई। घर में उसे वृद्ध माता-पिता, पत्नी और दो संतानों का लालन-पालन करना है, पुत्र ने बारहवीं कक्षा की परीक्षा दी है और अब उसे कॉलेज भेजना है, इन परिस्थितियों में क्या करें? निराश हो जानेवाली परिस्थिति में हमेशा यह याद रखना चाहिये कि भगवान एक द्वार बन्द करते हैं, तो दूसरे दो द्वार खोल देते हैं। ईश्वर में सम्पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखकर निष्ठापूर्वक प्रयत्न करने से भगवान दूसरा द्वार खोल देते हैं।

इसके अलावा मनुष्य को यह सोचना चाहिये कि जीवन में सुख और दुख तो आते रहते हैं। जैसे सुख भी स्थायी नहीं है, वैसे ही दुख भी स्थायी नहीं है। भगवान बुद्ध कहते हैं, "**सर्वं क्षणिकम्, दुखमपि क्षणिकम्**" – सब कुछ क्षणिक है, दुख भी क्षणिक है। सब कुछ अस्थायी है।

इतना समझने के बाद सुख और दुख दोनों में तटस्थता आ जाती है। फिर किसी भी प्रकार की बाह्य घटनाएँ विचलित नहीं कर सकती हैं। श्रीमाँ सारदादेवी भी कहती हैं, ''कोई भी कठिनाई अधिक देर तक टिकती नहीं है। पुल के नीचे के पानी की तरह तेज गति से बह जाती है।'' कठिनाइयाँ और दुख क्षणिक हैं, ऐसा मानने से कठिनाइयों और दुखों का भार कम हो जाता है।

कई बार मनुष्य आशा के विपरीत परिणाम आने से उद्विग्न हो जाता है। एक छात्रा ने एम.ए. की परीक्षा दी। विश्वविद्यालय के परीक्षाफल में पाँच अंक कम आने से वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण नहीं हो सकी। इससे उसे बहुत बड़ा मानसिक आघात लगा। क्योंकि यदि वह प्रथम श्रेणी में आती, तो उसे अमेरिका में आगे अध्ययन के लिये छात्रवृत्ति मिल जाती और उसे बहुत आगे बढ़ने का सुअवसर मिलता। इसके कारण कई दिन तक वह रोती रही, पर बाद में उसे एक अच्छे कॉलेज में अध्यापिका के रूप में नौकरी मिल गई और उसे छात्राओं को पढ़ाना बहुत अच्छा लगने लगा। साथ-साथ वह छात्राओं के चरित्र-निर्माण का भी कार्य करने लगी और छात्राओं में बहुत प्रिय हो गई। बाद में उसे समझ में आया कि अच्छा हुआ प्रथम श्रेणी नहीं आयी, अन्यथा विदेश में ऊँचा पद और भौतिक समृद्धि मिल जाने पर इतनी सारी छात्राओं का प्रेम, कार्य का संतोष, चित्त की प्रसन्नता और शान्ति उसे नहीं मिली होती। यह सत्य घटना बताती है कि जो सोचा हो, यदि उससे अलग हो जाए, तो चिन्ता करने के बदले उसे सहजता से स्वीकार कर, विपरीत परिस्थितियों में हँसते हुए कार्य किये जाएँ, तो विपरीत परिस्थिति भी अनुकूल हो जाती है। ईश्वर-भक्तों को एक बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिये कि ईश्वर जो भी करते हैं, वह हमारे अच्छे के लिये ही करते हैं। इससे मन में अद्भुत शान्ति आती है। तब किसी भी परिस्थिति में मनुष्य विचलित नहीं होता है। इसलिये जब भविष्य में चिन्ता हो, ''हाय, अब क्या होगा?'' ऐसा सोचकर हाथ-पर-हाथ रखकर बैठने के बजाय पुरुषार्थ में लग जाना चाहिए। इसके लिये Do your best and leave the rest (क्षमतानुसार पुरुषार्थ करो और फल की चिन्ता ईश्वर पर छोड़ दो) का सूत्र याद रखना चाहिए। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – '**मा फलेषु कदाचन**'। **(क्रमशः)**

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

३००. मेहनत की कमाई

संत फजल का नियम था कि वे परिश्रम से कमाने वाले के घर ही भोजन करते थे। वे एक दिन एक ग्राम में गए और उन्होंने एक व्यक्ति से पूछा, ''क्या यहाँ कोई ऐसा व्यक्ति है, जो अपनी कमाई से गुजारा करता है?'' उस व्यक्ति ने उत्तर दिया – सामने के मकान में एक सेठ रहता है। उसकी पत्नी का निधन हो चुका है। इसलिए घर का सारा काम स्वयं करता है। सेठ होते हुए भी वह दूसरे सेठ के यहाँ मुनीबी करता है। संत ने आगे पूछा, ''उसके कितने बेटे हैं और उसकी कुल कितनी कमाई होगी?'' उसने कहा, ''उसके चार बेटे हैं और सम्भवत: उसके पास लाख अशर्फियाँ होंगी।''

संत फजल ने सेठ के घर जाकर कहा, ''क्या मुझे एक रोटी मिल सकेगी?'' सेठ ने कहा, ''पहले आप अंदर तो आइये और भोजन करके ही जाइए।'' सेठ ने संत को आदर पूर्वक बिठाया। संत ने प्रश्न किया ''आपके कितने बेटे हैं और आपकी कितनी पूंजी होगी?'' सेठ ने जवाब दिया, ''मेरा एक ही बेटा है और मेरे पास लगभग पांच हजार अशर्फियाँ होंगी।'' इस पर संत उठ खड़े हुए और वापस जाने लगे। तब सेठ ने उन्हें रोका और भोजन किये बिना वापस लौटने का कारण पूछा। तब संत ने बताया, अभी-अभी एक व्यक्ति ने मुझे बताया कि आपके चार बेटे हैं और आपके पास लगभग एक लाख अशर्फियाँ होंगी। मैं झूठे व्यक्ति के घर भोजन नहीं करता।'

सेठ ने उन्हें फिर बिठाकर कहा, ''आप नाराज मत होइए और मेरी पूरी बात सुनिये। मेरे चार ही बेटे हैं, जिनमें से तीन शराबी और जुआरी हैं। एक ही बेटा सच्चाई से कमाता है। रही बात पूंजी की, तो मेरे पास लाखों की जायदाद है, जिसमें से मैं अपने पास पाँच हजार अशर्फियाँ रखता हूँ। शेष धन का बहुत-सा भाग अपाहिजों और गरीब-बेसहारा लोगों में खर्च करता हूँ और तीनों लड़के अपने शौक को पूरा करने के लिए ले लेते हैं। इसलिए अपनी कमाई पाँच हजार अशर्फियाँ बताईं।'' संत ने क्षमा माँगी और सेठ के यहाँ भोजन किया।

कर्मशीलता मानव जीवन की विशेषता है। स्वावलम्बी मनुष्य ईमानदार और परिश्रमी होते हैं। वे दूसरों के सामने हाथ नहीं पसारते और न ही किसी की दयादृष्टि पर निर्भर रहते हैं। इससे उन्हें आत्मसन्तुष्टि होती है, उन्हें गौरव का अनुभव होता है। जो परावलम्बी होते हैं, वे आलसी बन जाते हैं। ○○○

गीतातत्त्व चिन्तन (८/३)

(आठवाँ अध्याय)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१,२, अध्याय १ से ६वें अध्याय तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ७वाँ अध्याय का 'विवेक ज्योति' के १९९१ के मार्च अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ८वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है)

श्री भगवानुवाच –
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।।३।।
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।।४।।
अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।।५।।

श्री भगवान उवाच (श्री भगवान बोले) -

परमं अक्षरं (परम अक्षर) ब्रह्म (ब्रह्म है), स्वभाव: (अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा) अध्यात्मं (अध्यात्म) उच्यते (कहलाता है) भूतभावोद्भवकर: (सब भूतों के भावों की वृद्धि करनेवाला) विसर्ग: (त्याग) कर्मसंज्ञित: (कर्म कहा जाता है)।

– परम अक्षर ब्रह्म है, जीवात्मा ही अध्यात्म है, सब भूतों के भावों को उत्पन्न करनेवाला, देवताओं के निमित्त किया जानेवाला त्याग, कर्म नाम से कहा गया है।''

देहभृतां वर (हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन !) क्षर: भाव: (नश्वर भाव ही) अधिभूतं (अधिभूत है) पुरुष: च (और पुरुष ही) अधिदैवतम् (अधिदैव) है, अत्र देहे (इस देह में) अहमेव (मैं ही) अधियज्ञ: (अधियज्ञ रूप में हूँ)।

– देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन, देहादि नाशवान पदार्थ ही अधिभूत है, पुरुष (अर्थात् हिरण्यगर्भ) ही अधिदैव है और इस देह में मैं ही अधियज्ञ हूँ।

अन्तकाले च (अन्तकाल में भी) य: (जो) माम् एव स्मरन् (मेरा ही स्मरण करते-करते) कलेवरं (देह को) मुक्त्वा (त्यागकर) प्रयाति (प्रयाण करता है), स (वह) मद्भावं याति (मेरे भाव को प्राप्त होता है) अत्र (इस विषय में) संशय: न अस्ति (संशय नहीं है)।

– जो मनुष्य अन्तकाल में मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर छोड़कर जाता है, वह मेरे भाव को (अर्थात् स्वरूप को प्राप्त होता है– इसमें कोई सन्देह नहीं)।

भगवान ने कहा कि वह परम अक्षर ब्रह्म है। अक्षर ब्रह्म तो कहा, पर उसके साथ एक विशेषण लगा दिया परम। अब परम विशेषण क्यों लगाया? यहाँ इसीलिए लगाया है – अक्षर ब्रह्म कहने से उस नित्यसत्य का बोध हो जाता है, जो क्षयहीन और अविनाशी है, पर अक्षर शब्द से जीव का बोध होता है। ब्रह्म के दो भाग या ब्रह्म के दो रूप कहे जा सकते हैं - एक ब्रह्म का वह रूप जो क्षरण को प्राप्त होता है, जिसमें नाश की क्रिया चलती है और दूसरा वह रूप है जिसमें नाश की क्रिया नहीं चलती। हमने सातवें अध्याय में पढ़ा है कि हमारे भीतर दो प्रकार की प्रकृतियाँ हैं, परा प्रकृति और अपरा प्रकृति। अपरा प्रकृति का क्या मतलब है? अपरा प्रकृति अष्टधा है – आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, मन, बुद्धि और अहंकार। इसको अपरा प्रकृति कहते हैं, क्योंकि इसमें क्षरण होता है। यह प्रकृति नाश को प्राप्त होती है। परा प्रकृति कौन-सी है? कहते हैं – **जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।** भीतर में जो चैतन्य है, वह परा प्रकृति है। जैसे हम अपने ही भीतर देखें, तो ये दो प्रकृतियाँ साफ दिखाई देती हैं। एक जड़ का अंश है, और दूसरा चैतन्य का अंश है। यहाँ पर जो परम अक्षर ब्रह्म कहा गया कि अक्षर ब्रह्म से अलग है, बाद में कहा गया है – **ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म**। इसी अध्याय में आगे चलकर वे ॐ का, प्रणव के साधन का निर्देश करते हैं, जिसको हम प्रणव की साधना कहते हैं। ॐ को प्रणव भी कहा गया है - ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म। वह ॐ भी मानो अक्षरब्रह्म है। परन्तु यहाँ पर जो परम अक्षर ब्रह्म कहा गया, उसका उस ॐ से तात्पर्य नहीं है। ॐ का क्या मतलब है? उस समय जब यह प्रसंग आएगा, तब अधिक

विस्तार से हम उसकी चर्चा करेंगे। पर यहाँ पर थोड़ा-सा कह दें। इस ॐ को कहते हैं – शब्दब्रह्म, स्फोटब्रह्म, नादब्रह्म। ॐ का मतलब है उस सत्य का नाम। सत्य का नाम क्या है? इस पर ऋषियों ने बहुत चिन्तन किया कि जैसे एक रूप है, तो रूप का तो आप नाम दे सकते हैं। पर जिस सत्य का कोई रूप न हो, उसका क्या नाम आप देंगे? तो यह जो सत्य है, जो अनन्त है, उसका तो कोई रूप होता नहीं। सागर का क्या रूप होता है? आकाश का क्या रूप है? उसका तो कोई रूप होता नहीं और यह जो ब्रह्म है, यह जो सत्य है, वह तो आकाश और सागर से भी अधिक सूक्ष्म है। उसमें तो कोई रूप होता नहीं। अब जिसका कोई रूप नहीं है, उसका क्या कोई नाम हो सकता है? पर उसका नाम ऋषियों ने चिन्तन करके निकाला। क्या नाम निकाला? ॐ, यह ॐ ही उसका नाम है। ॐ से ही उस सत्य का निर्वचन होता है। इसीलिए आप देखेंगे कि हिन्दू धर्म के अन्तर्गत जितने भी मत-मतान्तर हैं, सबमें यह ॐ प्रामाणिक रूप से है। इस ॐ को ईश्वर के नाम के रूप में ग्रहण किया गया है। अब इसके पीछे की भावना क्या है? भावना यह है कि जिस समय वह ब्रह्म, वह सत्य, अपने को संसार के रूप में अभिव्यक्त करता है, तो पहली अभिव्यक्ति, रूपान्तरण की पहली क्रिया शब्द के रूप में हमारे समक्ष आती है। उस सत्य का जो पहला evolute होगा, उस सत्य का पहला प्रकाश होगा, वह नाद के रूप में होगा। उसी को स्फोट ब्रह्म कहा जाता है। यदि आपका मन एकाग्र हो जाए, तो आप देखेंगे कि भीतर में एक नाद चल रहा है। उसको कहते हैं प्रणव नाद, अनहत नाद। अनहत या अनाहत अर्थात् जो किसी चोट द्वारा उत्पन्न न हुआ हो। आहत माने चोट, अनाहत माने जिस पर कोई चोट न की गयी हो। तो बिना चोट किये जो आवाज निकले, उसको कहा गया अनाहत। यही अनाहत नाद हमारे भीतर चल रहा है। विश्व में चल रहा है। जो नाद की साधना करते हैं, वे अपने कान को बन्द कर लेते हैं और भीतर के नाद को सुनने की चेष्टा करते हैं। यदि आपका मन अपने आप एकाग्र हो, तो आप उसको भीतर-ही-भीतर सुन सकते हैं। थोड़ा-सा आप मन को भीतर ले जाइए, वह अनाहत नाद चल रह है। मानों लाखों, करोड़ों झींगुर एक साथ मिलकर चिल्लाने लगे, तो वह आवाज जैसी होगी, उसी प्रकार मानो अनाहत नाद भीतर में चल रहा है। झीं झीं की आवाज होती है, मानो झींकार भीतर में चल रहा है। वह अनाहत नाद है, वह ब्रह्म का पहला रूप है।

तो यहाँ पर यह कहा गया है कि यह पहली अभिव्यक्ति है नाद के रूप में। आप बाइबिल में भी पढ़ेंगे कि नाद के रूप में ईश्वर की पहली अभिव्यक्ति होती है। आप भिन्न-भिन्न धर्म-ग्रन्थों में पढ़ेंगे। हमारे यहाँ विवेचन करते हुए यही कहा गया कि सत्य पहले अपने को शब्द के रूप में प्रकट करता है। और फिर उसके बाद रूप आता है। ठीक यही प्रक्रिया रामचरितमानस में मिलेगी। बहुत सुन्दर ढंग से और संकेतात्मक रूप से गोस्वामीजी ने इस प्रसंग को हमारे सामने रखा है। आप पढ़ते हैं, मनु और शतरूपा तपस्या करने गये और तपस्या में लीन हो गये। वहाँ पर यह बताया गया कि मनु की तपस्या देखकर **बिधि हरिहर आए बहु बारा**। ब्रह्मा, विष्णु और महेश बहुत बार आते हैं और आकर कहते हैं – तुम वरदान माँगो, वरदान माँगो। परन्तु मनु महाराज किसी प्रकार विचलित नहीं होते।

मागहु बर बहु भाँति लोभाए।
परम धीर नहिं चलहिं चलाए।

मनु महाराज को उन्होंने तरह-तरह से लुब्ध किया। पर वे परम धीर हैं, वे विचलित ही नहीं होते हैं। वे तो तपस्या में हैं आँखें खोलते ही नहीं हैं। और तब भविष्यवाणी होती है – **मागु मागु बरु भै नभ बानी** –मनु हम तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हैं, तुम जो वरदान माँगना चाहते हो, माँग लो। तब मनु महाराज ने क्या कहा? आकाशवाणी सुनकर मनु महाराज फिर कहते हैं –

अगुन अखण्ड अनन्त अनादी।
जेहि चिंतहि परमारथबादी।।
नेति नेति जेहि बेद निरूपा।
निजानंद निरुपाधि अनूपा।।
ऐसेहु प्रभु सेवक बस अहई।
भगत हेतु लीलातनु गहई।।
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा।
तौ हमार पूजिहि अभिलाषा।।

महाराज आप कहते हैं वरदान माँगो, तो ठीक है, मैं वरदान माँगता हूँ, मैं जानता हूँ आप निर्गुण हैं, अनादि हैं, नेति नेति कहकर वेदों ने आपका वर्णन किया है, आप चिन्तन से परे हैं, मन से परे, वाणी से परे, पर ऐसा भी शास्त्र ने कहा है कि आप ऐसे जो निर्गुण और निराकार हैं, भक्तों पर कृपा करने के लिए, नरदेह धारण करते हैं, अत: आप मेरी इच्छा की पूर्ति कीजिए। **(क्रमश:)**

बुन्देलखण्ड के राजा छत्रसाल

बुन्देलखण्ड अर्थात् बुन्देले क्षत्रियों के रहने का स्थान। ये लोग बुन्देले नाम से क्यों प्रसिद्ध हुए, इसकी एक आख्यायिका है –

काशी से निर्वासित एक राजा घूमते-फिरते विन्ध्याचल पर्वत पर विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर में गए और वहाँ राज्य-प्राप्ति के लिए देवी की आराधना करने लगे। बहुत दिनों तक तपश्चर्या करने के पश्चात् देवी को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने अपने मस्तक की देवी के सामने बलि देनी चाही। उन्होंने तलवार अपनी गर्दन पर रखी ही थी कि देवी प्रकट हो गईं। उन्होंने राजा से वरदान माँगने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि मुझे राज्य-प्राप्ति हो। देवी ने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया कि उनका राज्य इतिहास में गौरवशाली होगा। उसके सिर कटने से कुछ रक्त-बिन्दु गिरे थे, तभी से वे बुन्देले कहे जाने लगे।

इसी बुन्देल राज्य में वीर राजा छत्रसाल हुए। उनका जन्म संवत् १७०६ में हुआ। उनके पिता का नाम चंपतराय और माता का नाम सारंधा था। चंपतराय स्वयं भी एक वीर योद्धा थे और उन्होने शाहजहाँ के नेतृत्व में लड़ने वाली मुगल-सेना को अनेक बार पराजित किया था। बालक छत्रसाल जब सात वर्ष के हुए, तब उनके पिता चंपतराय ने वीरगति प्राप्त की। तेरह साल तक वह अपने मामा के यहाँ रहा, इस बीच उसकी माँ की भी मृत्यु हो गई।

बालक छत्रसाल के मन में मुगलों के प्रति बहुत आक्रोश था। वह अपनी मातृभूमि को उनके चंगुल से छुड़ाना चाहता था। वह अपने चाचा के घर जाने के लिए निकला। उसके इस समय के बारे में एक कथा बहुत प्रसिद्ध है। वह मन्दिर में एक दिन देवी के दर्शन करने गया। वहाँ उसने देखा कि कुछ मुगल सिपाही निर्दोष गाँववालों को मार रहे हैं। मुगलों द्वारा भोले-भाले गाँववालों पर इस अन्याय को वह सहन नहीं कर सका। वह तुरन्त लपक कर मुगल सिपाहियों के पास गया और आक्रमण कर सबको मार दिया। गाँववाले उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

कुछ वर्ष अपने चाचा की देखरेख में छत्रसाल ने युद्ध के दाँव-पेच सीखे। उसका एक ही लक्ष्य था कि किस प्रकार बुन्देलखण्ड को मुगलों के शासन से मुक्त किया जाए। किन्तु मुगलों की बड़ी फौज से कैसे मुकाबला किया जाए? इसके लिए छत्रसाल को अनिच्छापूर्वक औरंगजेब के शाही मुगल सेना के मुखिया मिर्जा राजा जयसिंह की सेना में सम्मिलित होना पड़ा। वे वहाँ रहकर औरंगजेब की मुगल सेना की रणनीति से परिचित होना चाहते थे। मुगल सेना में उन्हें कुछ समय रहना पड़ा।

इसी बीच छत्रसालजी की शिवाजी महाराज से भेंट करने की इच्छा हुई। छत्रसाल ने वीर रस के कवि भूषण से शिवाजी महाराज के बारे में सुना था। उन्होंने यह भी सुना था कि किस प्रकार शिवाजी महाराज वीरतापूर्वक दक्षिण में मुगलों से सामना कर रहे हैं।

महाराष्ट्र के वीर शिवाजी महाराज और बुन्देलखण्ड के वीर छत्रसाल की भेंट एक ऐतिहासिक भेंट थी। दोनों मुगल साम्राजय को अपनी मातृभूमि से निकाल देना चाहते थे। छत्रसालजी जब शिवाजी महाराज से मिलने गए, तो यह सुनकर दंग रह गए कि शिवाजी महाराज पहले से ही उनके बारे में बहुत कुछ जानते हैं। छत्रसाल शिवाजी महाराज के साथ रहकर मराठा राज्य के स्वतन्त्रता संग्राम में उनका साथ देना चाहते थे। किन्तु शिवाजी महाराज को उनका यह प्रस्ताव अच्छा न लगा। उन्होंने छत्रसालजी से कहा, 'हम पूरे देश को मुगलों से स्वतन्त्र करना चाहते हैं। मेरी सलाह है कि आप बुन्देलखण्ड जाकर अपना संगठन बनाइए और मुगलों को चुनौती दीजिए।' उन्होंने छत्रसाल जी को आवश्यकता पड़ने पर यथासम्भव सहायता देने का आश्वासन दिया।

शिवाजी महाराज से मिलने के बाद छत्रसालजी बुन्देलखण्ड गए और बुन्देलों को संगठित कर एक सेना बनाई। धीरे-धीरे छत्रसालजी ने मुगल सरदारों पर आक्रमण कर उनको पराजित किया। सब ओर छत्रसालजी की धाक जम गई थी। बहुत से छोटे-मोटे बुन्देले सरदार उनका खुलकर समर्थन देने लगे। औरंगजेब इससे परेशान हो गया। उसके अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी उसकी मुगल सेना बुन्देलों के सामने पराजित हो रही थी।

शेष भाग पृष्ठ ५३२ पर

महाराष्ट्र के शक्ति-उपासना पीठ

जयश्री नातू, पुणे

आधारभूते चाधेये धृतिरूपे धुरंधरे।
ध्रुवे ध्रुवपदे धीरे जगद्धात्रि नमोऽस्तुते।।

(श्री जगद्धात्री-कल्प)

अर्थ – जो इस विश्व का आधार हैं, सभी पदार्थों का प्रत्यक्ष रूप हैं, जो मूर्तिमती धैर्यशालिनी हैं, जो स्थिररूपिणी और आसन पर आरूढ़ हैं, ऐसी धीर, गंभीर जगद्धात्रि मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

'श्रीजगद्धात्री-कल्प' में देवी माता की इस प्रकार वंदना की गई है। देवी माता शक्ति का प्रतीक हैं, स्वयं शक्तिस्वरूपा हैं।

शक्ति – शक्ति शब्द मूल 'शक्' धातु में क्तिन् प्रत्यय जोड़कर बना है। 'शक्' = समर्थ होना। शक्ति शब्द के तीन प्रमुख अर्थ हैं – सामर्थ्य, पराक्रम एवं प्राण।

प्रत्येक पदार्थ में कार्य उत्पादन के लिए उपयोगी ऐसा एक विशिष्ट धर्म होता है, जिसे उस पदार्थ से कभी अलग नहीं किया जा सकता। उसे शक्ति कहते हैं। उदाहरणार्थ – अग्नि एक पदार्थ है तथा दाहिका इस पदार्थ की शक्ति है, जो अग्नि से अभिन्न है।

हमारे शास्त्रों में हर एक देवता की अर्धांगिनी देवी हैं, जो उसकी शक्ति मानी जाती हैं। जैसे विष्णु की लक्ष्मी, शिव की पार्वती आदि। प्राचीन काल से शक्ति के अनेक रूप माने गये हैं तथा उनकी उपासना भी आर्यावर्त में होती आ रही है, इसके प्रमाण हमें इतिहास में मिलते हैं। महाराष्ट्र में शक्ति की उपासना वेद काल से चली आ रही है, इसके भी प्रमाण मिलते हैं। स्कंद पुराण में देवी के कई मंत्र तथा क्षेत्रों का वर्णन है।

महाराष्ट्र के साढ़े तीन पीठ – शक्ति-उपासना के साढ़े तीन स्थान महाराष्ट्र में प्रसिद्ध हैं। एक कोल्हापुर, दो - तुलजापुर, तीन – माहूर और आधा स्थान सप्तशृंगी।

यह साढ़े तीन भले ही अंक है, किन्तु यह ॐकार की साढ़े तीन मात्राओं का प्रतीक है। श्री गौडपादाचार्य की कारिकाओं के अनुसार (१-२३) 'अ' से विश्व की प्राप्ति, 'उ'' से तेज की प्राप्ति और 'म' से ज्ञान की प्राप्ति होती है। अर्धमात्रा तथा बिन्दु से तुरीयावस्था की उपलब्धि होती है, जहाँ मनुष्य को मोक्षगति मिलती है। उपरोक्त निर्देशित साढ़े तीन स्थान ॐकार की साढ़े तीन मात्राएँ मानी जाती हैं ।

१. कोल्हापुर की महालक्ष्मी माता

योजनं दश हे पुत्र काराष्ट्रो देश दुर्धरः।
तन्मध्ये पश्चक्रोशं च काश्याद्यादधिंक भुवि।।
क्षेत्र वै करवीराख्यं क्षेत्रं लक्ष्मी विनिर्मितम्।
तत्क्षेत्रेहि महत्पुण्यं दर्शनात् पापनाशनम्।।
तत्क्षेत्रेहि ऋषयः सर्वे ब्राह्मणा वेदपारगाः।

अर्थ – 'काराष्ट्र (करवीर – कोल्हापुर) इस दुर्गम स्थान का विस्तार ८० कोस दूर तक है। इसके बीच में माता लक्ष्मी द्वारा निर्मित क्षेत्र है। यह क्षेत्र काशी आदि क्षेत्रों से भी पवित्र है। इसके दर्शन से अनेक पापों का नाश होता है। यहाँ वेदपारंगत ब्राह्मणों तथा ऋषियों का वास है। इनके दर्शन से सभी पापों का क्षय होता है।''

कोल्हापुर महालक्ष्मी माता का क्षेत्र है। यहाँ महाशक्ति की तीन मूर्तियाँ स्थित हैं, जिनमें महालक्ष्मी सत्त्वगुण की प्रतीक मानी जाती हैं। ये भगवान विष्णु की अर्धांगिनी हैं। इनका नाम जगदम्बा भी है। मार्कण्डेय-पुराण में महालक्ष्मी की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार दी गई है –

महालक्ष्मी का आविर्भाव – महिषासुर नामक दैत्य बड़ा उन्मत्त और बलवान था। उसने देवताओं से युद्ध करके इन्द्र को पराजित किया। परन्तु केवल पराक्रम से मनुष्य प्रजाहितकारी दक्ष राजा नहीं बन सकता। उन्मत्त या राक्षसी वृत्ति के राजा को कोई भी प्रजा नहीं चाहती। प्रजा को निर्भय और सुखी जीवन देने वाले नैतिक स्वामी की आवश्यकता होती है। अत: महिषासुर के अत्याचारों से त्रस्त होकर ब्रह्मा सहित सर्व प्रजा भगवान विष्णु और शिव के पास गयी। इन दोनों देवताओं के भी शरीर से दीप्ति के कुछ अंश तेजी से बाहर आये और पुंजीभूत हो गये। उस पुंज से एक शक्तिस्वरूपा देवी बाहर आईं, जिन्हें महालक्ष्मी कहा गया।

सभी देवताओं ने उनकी वन्दना कर उन्हें अपने-अपने शस्त्रास्त्र दिये। उन शस्त्रों से वे महिषासुर का वध करें, ऐसी प्रार्थना महालक्ष्मी से की। महालक्ष्मी ने इस दैत्य के साथ घनघोर युद्ध करके उसका वध कर दिया।

एक दूसरी कथा है – ब्रह्माजी के मानस पुत्र कोलासुर और उसके पुत्र करवीर इन दोनों ने इस नगर के परिसर में जो भी देव-देवियाँ और ऋषि-मुनि रहते थे, उन्हें बहुत ही त्रस्त कर दिया। तब भगवान शंकर ने करवीर का वध किया। इसलिये इस स्थान का नाम करवीर पड़ा।

पद्मपुराण में करवीर क्षेत्र का वर्णन – पद्मपुराण में श्री करवीर क्षेत्र की महिमा विस्तार से दी है। उसमें लिखा है कि नैमिषारण्य में ऋषियों ने करवीर क्षेत्र के बारे में सूत जी से बहुत से प्रश्न किये। सूत जी के उत्तरों का सारांश है – ''करवीर नाम का यह क्षेत्र १०८ कल्पों का है। इसे 'महामातृक' भी कहते हैं। यहाँ भगवान विष्णु महालक्ष्मी के स्वरूप में स्थित हैं। इस क्षेत्र से पंचगंगा नदी प्रवाहित होती है। कश्यप आदि मुनियों ने पापनाशार्थ पंचगंगा को इस क्षेत्र में प्रवाहित किया है। यह आद्याशक्ति का मुख्य स्थान है। देवी माता के दोनों ओर जयन्ती और जीवन्ती नदियों का माँ की प्रदक्षिणा के बाद संगम हुआ। मंदिर की आठ दिशाओं में शिवलिंग हैं। शेषशायी भगवान महाविष्णु इस क्षेत्र के चारों महाद्वारों के रक्षक हैं। क्षेत्र के वायव्य भाग में प्रयाग तीर्थ है। रुद्रपद और हाटकेश्वर तीर्थ है। दुष्ट दैत्यों को शासित करने के लिए श्रीजगदम्बा ने रंकभैरव की नियुक्ति की थी, उनका भी स्थान यहाँ है। मुख्य क्षेत्र के नैऋत्य दिशा में 'नंदवाल' नामक क्षेत्र है। वहाँ भगवान पांडुरंग का मंदिर है। पूर्व दिशा में उज्ज्वलांबा माता, पश्चिम दिशा में सिद्ध बटुकेश, दक्षिण में माता कात्यायनी देवी और उत्तर में रत्नेश्वरजी तथा त्र्यंबुली देवी का मंदिर है।''

ऐतिहासिक प्रमाण – ईसा पूर्व से १२३५ ई. तक के शिलालेखों में प्रमाण मिलता है। ये शिलालेख शिलाहार, राष्ट्रकुट, चोल तथा चालुक्य राजवंश के भक्तों ने लिखे हैं। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि यह मंदिर २००० वर्ष पुराना है।

वर्तमान कोल्हापुर – महाराष्ट्र के दक्षिण में कोल्हापुर बहुत बड़ा शहर बसा हुआ है। १९५० के पहले कोल्हापुर भोसले राजाओं का निवास था। मुम्बई से यहाँ आने के लिये रेल तथा बस गाड़ियाँ उपलब्ध हैं। जाने में ९-१० घण्टे लगते हैं।

महालक्ष्मी का मंदिर – शहर के मध्य भाग में श्री महालक्ष्मी माता का पश्चिमाभिमुख मंदिर है। इस मंदिर की रचना हेमाडपंत शैली की है। इसका निर्माण पाषाण-खण्डों को जोड़कर किया गया है। मंदिर बनाने में चूने का उपयोग बिल्कुल नहीं किया गया है। मंदिर में दो सभामंडप हैं। एक मंडप लकड़ी का तथा दूसरा पाषाण का है। बाहर-भीतर अत्यन्त सुंदर शिल्पाकृति है। कृष्ण पाषाणों में ये अप्रतिम शिल्पाकृति बहुत ही आकर्षक और रमणीय हैं।

गर्भगृह में महालक्ष्मी माता का तथा दोनों ओर महाकाली और महासरस्वती देवी के मंदिर हैं। महालक्ष्मी और महाकाली के बीच कृष्णपाषाण में श्रीयंत्र की आकृति है। इसकी स्थापना स्वयं श्रीशंकराचार्यजी ने की है। महालक्ष्मी माता का मंदिर स्थापत्य कला का बेजोड़ नमूना है। कृष्णपाषाण में माता की बनाई मूर्ति की ऊँचाई तीन फुट है। पत्थर के चबूतरे पर खड़ी यह मूर्ति चतुर्भुज है। मूर्ति में माँ मातुलिंग, गदा, पानपात्र तथा खेटक धारण की हुई हैं। पीछे उनका वाहन सिंह खड़ा है। इस मंदिर में कलात्मक नक्काशी किये हुए स्तंभ हैं। ७२४ ई. में कर्णदेव नामक सूबेदार ने गर्भगृह बनवाया था। शत्रुओं के डर से दीर्घ काल तक इस मूर्ति को छुपा कर रखा गया था। किन्तु १७१५ ई. में मूर्ति की पूर्वस्थान पर ही स्थापना की गयी। तब से आज तक यहीं लोग उनकी अर्चना-उपासना करते आ रहे हैं। जैन सम्प्रदाय के अनुयाई उनकी पद्मावती के नाम से उपासना करते हैं। इस प्रकार महाराष्ट्र में करवीर को मातृशक्ति का क्षेत्र माना जाता है। महाराष्ट्रीय महिलायें करवीर माता को सौभाग्यदायिनी मानती हैं। ये लोग श्रीफल, वस्त्र और सौभाग्य अलंकार माता को चढ़ाकर उससे अपने सुहाग की प्रार्थना करती हैं।

देवी मन्दिर में नित्य-नैमित्तिक कार्यक्रम

नित्य पूजा – श्रीमहालक्ष्मी देवालय, कोल्हापुर में दैनिक पूजा इस प्रकार होती है – सुबह साढ़े चार बजे पहला घंटा बजने के साथ मन्दिर खुल जाता है। पुजारी मंत्रोपचार से माँ की पूजा करते हैं। आरती के समय भक्त लोग भजन तथा भुपाली गाते हैं। ८ बजे महाभिषेक होता

है। संगीत कलाकार संगीत गाकर सेवा करते हैं। साढ़े ग्यारह बजे अन्न-महाभोग तथा महाआरती होती है।

संध्या समय महालक्ष्मी माता की अलंकारों से पूजा होती है, जो अत्यन्त दर्शनीय होती है। सुवर्ण तथा हीरे-मोतियों के सुन्दर अलंकारों से देवी माँ का रूप निखर उठता है। प्रतिदिन इस समय यहाँ नारायणी स्तोत्र गाया जाता है। अन्नभोग देकर रात १० बजे भजन, शयनारती के बाद सारे अंलकार उतार दिये जाते हैं। पान, पानी तथा अगरबत्ती रखकर दरवाजे बन्द कर दिये जाते हैं।

नैमित्तिक कार्यक्रम – प्रत्येक शुक्रवार को रात्रि में देवी की पालकी में शोभा-यात्रा निकलती है। वर्ष में चार बार पूर्णिमा की तथा चैत्र प्रतिपदा की रात में दीपोत्सव मनाया जाता है। मन्दिर के शिखरों पर दीप जलाये जाते हैं। यह बड़ा आकर्षक उत्सव है। नवरात्रि के अवसर पर नौ दिन उत्सव मनाया जाता है।

देवी माता की उपासना में नौ अंक का विशेष महत्त्व है। दशमलव का यह सबड़े बड़ा और परिपूर्ण अंक है। यह बड़ा अद्‌भुत अंक माना जाता है। यदि नौ की गुणा करके आने वाले अंको को मिलाया जाय, तो उत्तर नौ ही आता है। जैसे ९x९=८१ = ८+१ = ९ ९x५=४५ ४+५=९ आदि। शायद इसीलिए इस अंक को श्रीशक्ति का प्रतीक माना गया है। दूसरे दिन माता की पालकी राजमहल और दलित बस्ती में आरती के लिए जाती है। दक्षिणायन तथा उत्तरायण में केवल ३ दिन माता के चरणों से लेकर मुकुट तक सूर्य की किरणें पड़ती हैं। यह किरणोत्सव देखने बड़ी संख्या में यात्री आते हैं । भक्तों की अभीष्टदायिनी मंगलकारिणी सत्त्वगुणी जगमाता जगनियन्ता विष्णु भगवान की भार्या श्रीमहालक्ष्मी माँ आज भी करवीर क्षेत्र में खड़ी हैं, हम उन्हें हृदय से प्रणाम करते हैं –

विश्वरूपस्य भार्या या पद्मे पद्मालये शुभे।
सर्वतः पाहि मां देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तुते।।

महाराष्ट्र के ३ शक्तिपीठो में हमलोगों ने महालक्ष्मी माता करवीर पीठ के दर्शन किये। अब हम रजोगुणमयी तुलजापुरवासिनी श्रीमहासरस्वती के दर्शन करेंगे।

२.

श्रीक्षेत्र तुलजापुर की महासरस्वती देवी

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगदव्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।
(ब्रह्मकृत सरस्वती स्तोत्रम्)

– मैं उस बुद्धिदायिनी परमेश्वरी भगवती माँ शारदा की वन्दना करता हूँ, जो गौरवर्णमयी, नित्य ब्रह्मचिन्तन में लीन, चराचर जगत् से पहले विद्यमान तथा जगतव्यापिनी हैं, जो अपनी हाथों में वीणा और पुस्तक धारण की हुई हैं, जो अभय प्रदान करनेवाली तथा जड़ता और तमान्धता का विनाश करनेवाली हैं, जो अपने हाथों में स्फटिक की माला धारण करती हैं और पद्मासन पर विराजमान हैं।

शिवाजी महाराज की कुलदेवी तुलजा भवानी – महाराष्ट्र के उस्मानाबाद जिले में बालाघाट नामक एक छोटा-सा पर्वत है। उसके पठारी भाग में तुलजापुर गाँव बसा हुआ है। यहाँ भवानी माता का मंदिर है। ये महाराष्ट्र के राजा छत्रपति शिवाजी महाराज की कुलदेवी हैं। तुलजा माता के बारे में पुराणों में एक कथा मिलती है –

तुलजा भवानी की कथा – कृतयुग में दंडकारण्य देश में कर्दम नामक ऋषि रहते थे। उनकी पत्नी का नाम अनुभूति था। कर्दम ऋषि के अकाल देहावसान हो जाने के बाद अनुभूति सती हो जाना चाहती थी, किन्तु उसके परिवारवालों ने उसे रोक दिया, क्योंकि तब वह गर्भवती थी। यथासमय उसे पुत्रप्राप्ति हुई। पुत्र के बड़े होने पर वह उसे विद्यार्जन के लिए गुरुकुल में पहुँचा कर स्वयं मेरु पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगी।

कई दिनों बाद कुकुर नामक एक दैत्य आखेट खेलने वहाँ आया और लावण्यवती अनुभूति को देखकर काममोहित हो गया। उसके आसक्तिवश किये स्पर्श से अनुभूति जाग उठीं। वे अपनी रक्षा के लिये आदिशक्ति से आर्त हृदय से प्रार्थना करने लगीं। माता पार्वती ने अष्टभुजा तुलजा देवी के रूप में प्रकट होकर कुकुर का वध कर दिया । आनन्द विभोर हो अनुभूति माँ से प्रार्थना करती हैं – ''हे माँ ! यहाँ प्रकट होकर तुमने मेरी रक्षा की है। अब यहीं निवास करो और जैसे संकटों से मेरी रक्षा की, वैसे ही अपने भक्तों को भी संकटों से मुक्त करो।''

देवी माँ ने अनुभूति की विनती स्वीकार कर ली। वे अपने भैरव गणों सहित इसी स्थान पर रहने लगीं, जिसे

आज तुलजापुर कहा जाता है।

मुख्य-मंदिर – मुख्य मंदिर में जाने के लिये नीचे उतरना पड़ता है। पहली ९० सीढ़ीयाँ उतरने के बाद बायीं ओर 'कल्लोल' नामक एक कुण्ड है, जिसमें सारे तीर्थों का जल है, ऐसा मानते हैं। यह कुंड ४०x१६ फीट है। दायीं ओर गोमुख तीर्थ है, जिसमें एक अखण्ड जलधारा बहती रहती है। कुछ सीढ़ियाँ उतरने के बाद मंदिर है। विशाल प्रांगण है। बगल में चबूतरे हैं। प्रांगण में एक होमकुंड और दो दीपस्तंभ हैं। श्रीशिवराय ने स्वयं इस दीपस्तंभ का निर्माण कराया था। हेमाडपंती शैली के बनाए इस मंदिर का शिखर सोने का है। दीवारों पर पशु, पक्षी, यक्ष-गंधर्वों की मूर्तियाँ हैं।

शालिग्राम शिला से बनी साढ़े तीन फुट लम्बी सिंहवाहिनी अष्टभुजा मूर्ति गर्भगृह में है। मूर्ति बहुत सुन्दर है । मूर्ति पर सिन्दूर चढ़ाने की प्रथा नहीं है। मूर्ति के मुकुट में सयोनि लिंग है। मूर्ति के हाथों में बिछुवा, बाण, चक्र, शंख, धनुष, पानपात्र तथा दैत्य की शिखा है। पीठ पर बाण तथा दायीं और बायीं ओर सूर्य-चन्द्र हैं ।

नित्य पूजा – श्रीतुलजा माता के मंदिर में नित्य दिन में ४ बार माँ की पूजा होती है – प्रातः, मध्याह्न, संध्या और रात्रि। इन पूजाविधियों में कुछ साधनों का उपयोग यहाँ की विशेषता है। साधनों का सांकेतिक रूप ऐसे है –

१. संबल – यह एक रणवाद्य है, जिसे अभिषेक के समय बजाया जाता है। नाद आकाश का प्रतीक है। इससे पंचमहाभूतों में से एक आकाश का पूजन किया जाता है।

२. कौड़ी तथा कौड़ियों की माला – देवी माँ को सफेद कौड़ियों के अलंकार चढ़ाये जाते हैं। कुछ भक्त कौड़ियों की माला पहनकर मंदिर में नृत्य कर सेवा करते हैं। कौड़ी आत्मशक्ति की प्रतीक है। निरंजन अवस्था की प्राप्ति के लिए आत्मा को जगाकर आत्मप्रकाश देखने के लिये कौड़ी की पूजा एक साधना बतायी गयी है।

३. पोत – इसका अर्थ है मशाल। यह सफेद कपड़े की बनती है। इससे देवी की आरती होती है। सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों का मशाल प्रतीक है। जलाने का अर्थ इन तीनों के परे जाना है। यह निर्गुण उपासना का द्योतक है।

४. परडी – परडी का अर्थ है टोकरी। इस टोकरी में भक्त देवी माँ से ज्ञान की भीख माँगता है। टोकरी में भिक्षा माँगने का अर्थ है – उपासना में अंहकार के नाश के लिए भिक्षा-पात्र हाथ में लेना सबसे बड़ी साधना है। देवी माँ तो महामाया हैं। उनके सामने झोली फैलाने से शायद वे करुणा कर हमारा मार्ग प्रशस्त कर दें।

५. चौरी, छत्री और अब्दागिरी – महासरस्वती के रूप में तुलजा भवानी रजोगुण की प्रतीक हैं । राजवंश की ये कुलदेवी भी हैं। इसलिए इनके चरणों में सब राजवैभव रखा गया है। शोभा-यात्रा के समय इनके सिर पर मयूर पंख हिलाये जाते हैं। मयूर इनका वाहन है। बिरादरी के विशेष लोग इस पर राजछत्र तथा अब्दागिरी हाथ में लिए चलते हैं। यात्रा में इन राजलक्षणों के कारण माँ ऐश्वर्यवशालिनी साम्राज्ञी लगती हैं।

नैमित्तिक पूजा

नवरात्रोत्सव – नौ दिन महापूजा होती है। प्रतिदिन शोभा यात्रा होती है। अष्टमी के दिन चंडी-होम होता है। दशहरे के दिन बड़ी शोभा यात्रा निकलती है, जिसमें विशेष भक्त अपनी उंगली काटकर माँ को रुधिर तिलक करते हैं। इसके अलावा गुढ़ी पाड़वा, मकर संक्रांति के दिन भी महापूजा होती है।

घाटशिला – तुलजापुर की दक्षिण दिशा में एक विशाल शिला है, जिसे घाटशिला कहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि पार्वती माता ने सीताजी का रूप धारण कर इसी शिला पर बैठकर श्रीराम भगवान से वार्तालाप किया था और लंका का मार्ग माँ ने ही रामजी को बताया था ।

संत एकनाथजी के भावार्थ-रामायण के अनुसार तुलजा माता ने श्रीराम भगवान को लंकायुद्ध में विजयी होने का वर दिया था। इसीलिये तुलजा माता को 'रामवरदायिनी' भी कहते हैं।

महाराष्ट्र के सांस्कृतिक इतिहास में माता तुलजा भवानी एक प्रेरक शक्ति मानी जाती हैं। आज भी इसी भाव से महाराष्ट्र में माता की उपासना की जाती है। आइए, हम भी आदिशक्ति महासरस्वती को प्रणाम करें –

नमस्ते शारदे देवी काश्मीर पुरवासिनी।
त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यादानञ्च देहि मे।।

(सरस्वती-रहस्योपनिषत्)

(क्रमशः)

सामाजिक विकास में न्याय-व्यवस्था का प्रयोजन

अपर्णा दीवान

अधिवक्ता, जिला कोर्ट, रायपुर

व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है। उसकी प्रवृत्ति उसे समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में लाती है और उनसे सद्व्यवहार करने के लिये प्रेरित करती है। मनुष्य का सामाजिक जीवन इन्हीं सद्व्यवहारों पर निर्भर है। समाज में मानव के व्यवहारों पर उचित नियंत्रण आवश्यक होता है, ताकि उनके परस्पर हितों की रक्षा हो सके। इसी उद्देश्य से विधियों का निर्माण किया जाता है, जो नागरिकों को उनके कर्तव्यों तथा दायित्वों का बोध कराती है तथा अनुचित आचरण हेतु उन्हें दंडित करने का अधिकार राज्य को देती है। मानव जीवन में विधि का अत्यधिक महत्त्व है। मनुष्य के समस्त व्यवहार और क्रिया-कलाप विधि द्वारा नियंत्रित रखे जाते हैं। विधि मनुष्य के स्वच्छन्द जीवन को अनुशासित रखती है।

मानव आचरण से सम्बन्धित किसी भी नियम, सिद्धान्त या आदर्श को 'विधि' की संज्ञा दी जा सकती है। 'विधि' शब्द का अर्थ है, ऐसे नियम जो समाज में मानव आचरण को नियंत्रित करते हैं। यदि मानव को नियंत्रित न रखा जाये, तो उसमें उच्छृंखल जीवन व्यतीत करने की प्रवृत्ति आ जाती है, जो समाज की प्रगति एवं शान्ति में घातक हो सकती है। इस प्रकार सामाजिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में विधि एक प्रभावी साधन की भूमिका निभाती है।

प्राचीन काल में विधि मूलत: धर्म पर आधारित थी, जिसमें धार्मिक मान्यताओं के अलावा नैतिक, सामाजिक एवं विधिक कर्तव्यों का समावेश था। उसमें **आचारः परमो धर्मः**, मानव के सदाचरण को ही सर्वोपरि धर्म माना गया। **अहिंसा परमो धर्मः,** अहिंसा को परम धर्म माना गया। साथ ही एक ऐसा सूत्र, जो **धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः**, जो समाज के विभिन्न व्यक्तियों को एक साथ रहने तथा अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करने का बोध कराता था। इसका मूल उद्देश्य एक ऐसी विधि व्यवस्था स्थापित करना था, जो समाज में व्यक्तियों के परस्पर टकराव को दूर करे तथा विपन्नता, शोषण तथा अन्याय से संरक्षण करे।

कालान्तर में हिन्दू-शासन काल में भी विधि को शासक तथा राज्य ने श्रेष्ठतर माना है। सम्राट अशोक, हर्षवर्धन, चंद्रगुप्त आदि ने स्वयं को जनता का न्यासी मानते हुए सदैव प्रजाहित को सर्वोपरि माना। धर्मशास्त्रों तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में शासक के धर्म की व्याख्या राजधर्म के रूप में की गयी, जिसमें प्रजा की सुरक्षा तथा समाज में सुव्यवस्था बनाये रखना शासक का परम कर्त्तव्य था। याज्ञवल्क्य, नारद, कौटिल्य आदि ने शासक को सदैव विधि के अधीन माना तथा उनके मतानुसार शासक मनमाने कानून बनाने के लिये स्वतंत्र नहीं था, क्योंकि वह अन्य लोगों की भाँति स्वयं भी विधि द्वारा आबद्ध था।

मानव समाज युगों से परिस्थिति के अनुसार बदलता चला आ रहा है। सामाजिक विकास के साथ-साथ मानव के आचार-विचार तथा सद्व्यवहार बदलते रहते हैं। अत: कानून में भी समयानुसार परिवर्तन होते चले आ रहे हैं। विधि पर सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ता है। इसीलिये विद्वानों ने विधि को 'समाज का दर्पण कहा है।' अर्थात् किसी स्थान-विशेष की विधि में वहाँ की सामाजिक परिस्थितियों की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

मानव के सर्वांगीण विकास में विधि को व्यापक तथा क्रियात्मक बनाना जरूरी समझकर मानवीय हितों की रक्षा के लिये बीसवीं सदी में विधि के विकास में लोकहितवाद का समावेश हुआ तथा व्यक्ति के मूल अधिकारों के संरक्षण हेतु संविधान के भाग-३ में शोषण और अन्याय के निरोधार्थ कुछ मूल अधिकार दिये गये और उनके उल्लंघन पर सीधे उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय से उपचार प्राप्त करने का मूल अधिकार दिया गया है।

भारत में लोकहित वादों के विकास में कोई भी जनसेवी व्यक्ति लोकहित में याचिका दायर कर सम्बन्धित किसी मामले में न्याय प्राप्ति की याचना कर सकता है। भारत में लोकहित वादों के विकास में माननीय न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती तथा न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्णा अय्यर का विशेष योगदान रहा है, जिन्होंने सामाजिक न्याय प्रस्थापित करने के उद्देश्य से श्रमिकों, कैदियों, अपराधियों, निर्धन एवं गरीबों, बन्धुआ मजदूरों, शोषित महिलाओं, बालकों आदि को समुचित न्यायिक तथा समाजिक सरंक्षण आदि दिये जाने हेतु आवश्यक निर्देश तथा मार्गदर्शिकाएँ निर्धारित कर न्यायिक क्षेत्र में अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है।

विधि-विकास के साथ गरीबों तथा साधनहीनों को नि:शुल्क विधिक सहायता कराने की नवीनतम पद्धति उल्लेखनीय प्रगति है। लोक अदालतों का मुख्य उद्देश्य आपसी सुलह-समझौते द्वारा जन-साधारण के विवाद को

शीघ्रता से निपटाकर उन्हें सस्ता और सुलभ न्याय उपलब्ध कराना है। इस सन्दर्भ में उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री पी.एन. भगवती ने कहा कि – ''जहाँ अब तक पक्षकारों को न्यायलय के दरवाजे खटखटाने पड़ते थे, वहाँ अब लोक अदालतों की व्यवस्था से न्याय स्वयं पक्षकारों के दरवाजे पर जाकर उन्हें न्याय दिलाता है।''

इसी प्रकार निर्धनों को नि:शुल्क विधिक सहायता दिलाने के सम्बन्ध में संविधान (बयालीसवाँ संशोधन) अधिनियम १९७६ द्वारा संविधान के राज्य नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अध्याय में एक नया अनुच्छेद ३९-क जोड़ा गया, जिसके द्वारा साधनहीनों को नि:शुल्क विधिक सहायता दिये जाने हेतु आवश्यक कदम उठाए गये, ताकि समाज के निर्धन, एवं उपेक्षित वर्ग धनाभाव में न्यायप्राप्ति के अधिकार से वंचित न रह जाएँ। समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को नि:शुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराने हेतु केन्द्र सरकार ने लीगल सर्विसेज अथॉरिटीज एक्ट-१९८७ पारित किया है।

महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने हेतु अनेक विधि का निर्माण किया गया, जिसमें गर्भपात को कानूनी वैधता प्रदान किया, विवाह-विच्छेद सम्बन्धी कानून, दहेज निवारण (संशोधन) अधिनियम, १९८४, महिलाओं की सुरक्षा हेतु महिलाओं को घरेलु हिंसा के विरुद्ध वैधानिक संरक्षण दिलाने हेतु घरेलू हिंसा से महिलाओं को संरक्षण अधिनियम-२००५, महिलाओं को ३३ प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया । साथ ही बालकों के विकास एवं संरक्षण के लिए भी अनेक विधि बनाये गये तथा उनकी शिक्षा के लिए विशेष कदम उठाये गये। जाति-विशेष को असमानता एवं अस्पृश्यता के आधार पर हो रहे दुर्व्यवहार से संरक्षित करने हेतु समान पारिश्रमिक अधिनियम-१९७६, बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम-१९७६, सिविल राइट्स अधिनियम-१९७६, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम-१९८९ आदि दलित एवं शोषित वर्ग को सामाजिक एवं आर्थिक न्याय दिलाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

विधि ने केवल एक जीवित शरीरधारी व्यक्ति को ही अधिकार, कर्त्तव्य नहीं दिये, बल्कि अन्य प्राणियों, संस्थाओं आदि को भी अधिकार व कर्त्तव्य प्रदान किये गये हैं। सोसाइटी, क्लब, सभाओं, परिषदों, नगर पालिकाओं, यूनियनों, निगमों आदि को अलग व्यक्ति मानकर उनको अलग-अलग व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। पशुओं के विरुद्ध किये गये अपराधों को समाप्त करने के लिये अनेक अधिनियम बनाये गये हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज के विकास एवं शान्ति हेतु विधि की बड़ी भूमिका है। ○○○

जीवन-नाशक - अहंकार

प्रफुल्ल कुमार सी कोटेचा, तमिलनाडू

मनुष्य अपने अहंकार के कारण अशान्त रहता है। अहंकार को फुटबाल की उपमा दी गई है। जैसे लोग फुटबाल को तब तक ठोकर मारते हैं, जब तक उसमें हवा भरी रहती है। हवा निकल जाने पर उससे कोई नहीं खेलता। ऐसे ही जब तक मन में झूठी मान-वैभव-धन के अहंकार की हवा भरी रहती है, तब तक वह फूला नहीं समाता। यह अफीम के नशे से भी अधिक खतरनाक है, जो हमारी दशा और दिशा को बिगाड़ देता है। भगवान महावीर ने कहा है, पत्थर के स्तम्भ के समान जीवन में कभी न झुकने वाला अहंकार आत्मा को नरक की ओर ले जाता है। इस अहंकार से मनुष्य को बड़ा प्रेम है, तभी तो उसके सिर पर बड़ा बनने का भूत सवार है। वह कहता है कि जिसके पास शक्ति-सत्ता-वैभव है, वह बड़ा है। संतो ने ऐसे अहंकारी को बड़ा नहीं कहा। बड़ा तो वह है, जिसमें बड़प्पन है, जो बड़ों का आदर और छोटों से प्यार करना जानता है, जो हाथ जोड़कर जीना और मुस्कुराकर मरना जानता है। उसके जीवन में कभी अहंकार की छाया नहीं पड़ सकती।

कुछ नहीं होने पर भी अपने को बहुत कुछ मानने का भाव मनुष्य को अहंकारी बना देता है। इस संसार में सब कुछ क्षणभंगुर है। जब कुछ रहेगा ही नहीं, उस पर अभिमान क्यों? ऐसे चिन्तन से अहंकार विदा हो जाएगा। अहंकार को छोड़ना एक साधना है, जो विनम्रता से उत्पन्न होती है। पर कई बार विनम्रता भी अहंकार की चादर ओढ़ लेती है। त्याग में भी अहंकार का भाव जाग सकता है कि मैंने इतना बड़ा त्याग किया। सज्जन, सन्त भी अहंकार के वशीभूत हो जाते हैं। इसलिए अहं के विचित्र रूप को समझना जरूरी है। जिसने अहंकार त्याग दिया, वह भवसागर तर गया। ऐसी हमारी संस्कृति कहती है।

दूसरे का अस्तित्व अस्वीकार करना, स्वयं को ऊँचा समझना अहंकार है। अहंकार के मूल में धन, शक्ति सौन्दर्य का गर्व निहित होता है। व्यक्ति को अहंकार से दूर रहना चाहिए, क्योंकि अहंकार रूई में लिपटी हुई आग है, जिससे देर तक अपने को नहीं बचाया जा सकता। मनुष्य को न घमंड करना चाहिए और न किसी गरीब का मजाक उड़ाना चाहिए। क्योंकि जीवनरूपी नाव सदैव समुद्र में पड़ी रहती है, पता नहीं अगले पल हमारे साथ क्या हो। हमारा अहंकार मृत्यु से काँपता है। सोचें, एक दिन हमें भी लोग मरघट पहुँचा देंगे। अत: जीवन में अहंकार न कर शान्ति का जीवन यापन करें। यदि अहंकार चला जाय, तो धर्मग्रंथ की एक पंक्ति पढ़े बिना हम जहाँ भी बैठे हैं, वहीं से मोक्ष प्राप्त हो जाएगा। ○○○

आत्मबोध

श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसङ्कुलः ।
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्यसद्भवेत् ।।६।।

पदच्छेद – *संसार: स्वप्नतुल्य: हि राग-द्वेषादि-सङ्कुल: स्वकाले सत्यवत् भाति प्रबोधे सति असत् भवेत् ।*

अन्वयार्थ – **राग-द्वेषादि-सङ्कुलः** राग-द्वेष आदि से पूर्ण **संसारः** संसार **हि स्वप्नतुल्यः** मात्र स्वप्न के समान है **स्वकाले** देखते समय (तो यह) **सत्यवत्** सत्य जैसा **भाति** प्रतीत होता है, (परन्तु) **प्रबोधे** जागने **सति** के बाद **असत्** झूठा **भवेत्** हो जाता है ।

श्लोकार्थ – राग-द्वेषों आदि से परिपूर्ण यह संसार स्वप्न के समान है । (व्यक्ति) जब तक स्वप्न देखता रहता है, तब तक वह (तथा उसमें दिखनेवाली चीजें) सत्य प्रतीत होती हैं, (परन्तु) जब जाग जाता है, तब उसे सपने में देखी हुई चीजें झूठी समझ में आती हैं ।

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिका रजतं यथा ।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ।।७।।

पदच्छेद – *तावत् सत्यम् जगत् भाति शुक्तिका रजतम् यथा यावत् न ज्ञायते ब्रह्म सर्व-अधिष्ठानम् अद्वयम् ।*

अन्वयार्थ – **यावत्** जब तक **सर्व-अधिष्ठानम्** सबका आधार **अद्वयम्** अद्वय **ब्रह्म** ब्रह्म **न ज्ञायते** ज्ञात नहीं होता, **तावत्** तब तक **जगत्** संसार **सत्यम्** सत्य **भाति** प्रतीत होता है, (वैसे ही) **यथा** जैसे **शुक्तिका** सीपी (भ्रमवश) **रजतम्** चाँदी (प्रतीत होती है) ।

श्लोकार्थ – जैसे सीपी में चाँदी का भ्रम हो जाता है, (वैसे ही) जगत् तभी तक सत्य प्रतीत होता है, जब तक कि जगत् के आधार-स्वरूप अद्वय ब्रह्म का बोध नहीं हो जाता ।

उपादानेऽखिलाधारे जगन्ति परमेश्वरे ।
सर्गस्थितिलयान्यान्ति बुद्बुदानीव वारिणि ।।८।।

पदच्छेद – *उपादाने अखिल-आधारे जगन्ति परमेश्वरे सर्ग-स्थिति-लयान् यान्ति बुद्बुदानि इव वारिणि ।*

अन्वयार्थ – **अखिल-आधारे** सबके आधार तथा (सबके) **उपादाने** उपादान-स्वरूप **परमेश्वरे** परमेश्वर में, **जगन्ति** सारे जगत् **सर्ग-स्थिति-लयान्** सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय को **यान्ति** प्राप्त होते है, (वैसे ही) **बुद्बुदानि इव** जैसे बुलबुले **वारिणि** पानी में ।

श्लोकार्थ – जैसे बुलबुले जल में ही उत्पन्न होकर, उसी में रहकर, उसी में विलीन हो जाते हैं; वैसे ही सबके आधार तथा सबके उपादान-स्वरूप परमेश्वर में ही सारे जगत् उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय को प्राप्त होते हैं ।

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः ।
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ।।९।।

पदच्छेद – *सत्-चित्-आत्मनि अनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिता: व्यक्तय: विविधा: सर्वा हाटके कटक-आदिवत् ।*

अन्वयार्थ – **सर्वा** सभी **विविधाः** विभिन्न **प्रकल्पिताः** अभिव्यक्त **व्यक्तयः** रूप **नित्ये** सर्वदा **सत्-चित्-आत्मनि** सत्-चित्-स्वरूप आत्मा में (अर्थात्) **विष्णौ** सर्वव्यापी विष्णु में **अनुस्यूते** स्थित हैं; **हाटके** सोने में **कटक-आदिवत्** कंगन आदि (आभूषणों) के समान ।

श्लोकार्थ – जैसे कंगन आदि सभी आभूषण सर्वदा (अपने उपादान-रूपी) सोने में विद्यमान रहते हैं; वैसे ही जगत् के सारे विविध अभिव्यक्त रूप सर्वदा सत्-चित्-स्वरूप आत्मा में, (अर्थात्) सर्वव्यापी विष्णु में ही स्थित हैं ।

यथाऽऽकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः ।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे केवलो भवेत् ।।१०।।

पदच्छेद – *यथा आकाश: हृषीकेश: नाना उपाधिगत: विभु: तत् भेदात् भिन्नवत् भाति तत् नाशे केवल: भवेत् ।*

अन्वयार्थ – **आकाशः** आकाश **यथा** के समान, **विभुः** सर्वव्यापी **हृषीकेशः** परमात्मा **नाना** विभिन्न **उपाधिगतः** उपाधियों से जुड़कर **तत्** उन (उपाधियों) के **भेदात्** भेद से **भिन्नवत्** विभिन्न जैसा **भाति** प्रतीत होता है (और) **तत्** उन (उपाधियों) का **नाशे** नाश होने पर **केवलः** एकमात्र (वही) **भवेत्** रह जाता है ।

श्लोकार्थ – जैसे आकाश भिन्न-भिन्न उपाधियों के कारण अनेक प्रतीत होता है और उपाधियों का नाश होने पर एक हो जाता है, वैसे ही एक ही सर्वव्यापी सत्ता भिन्न-भिन्न उपाधियों के कारण अनेक प्रतीत होती हैं और उनका नाश होने एक ही रह जाती है ।

गुरुनानक जयन्ती विशेष

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

८०. गुरु नानक की अन्तर्दृष्टि

मन्दिरों तथा गिरजाघरों में जो कवायद होती है – कुछ खास-खास समय पर घुटने टेकना, फिर खड़े होना और कई तरह के व्यायाम करना, सब मशीन की तरह होता है, जबकि हमारा मन कुछ और ही सोच रहा होता है – इन सबका सच्चे धर्म से कोई नाता नहीं है । भारत में गुरु नानक नाम के एक बड़े महापुरुष हुए हैं, जिनका जन्म लगभग चार सौ वर्ष पूर्व हुआ था । आप लोगों में से कुछ ने सिक्खों के विषय में सुन रखा होगा । गुरु नानक सिक्ख धर्म के (संस्थापक तथा) अनुयायी थे ।

एक दिन वे मुसलमान लोगों की मस्जिद में गये । जैसे एक ईसाई देश में कोई भी उनके धर्म के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं कर सकता, वैसे ही मुसलमानों के ही देश में उनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता । ... तो गुरु नानक वहाँ गये और उस विशाल मस्जिद में मुसलमान लोग खड़े होकर प्रार्थना कर रहे थे । ये लोग एक पंक्ति में खड़े हो जाते हैं, फिर झुकते हैं, उसके बाद खड़े हो जाते हैं और इसके साथ ही कुछ शब्दों की आवृत्ति करते हैं । उनमें से एक व्यक्ति इनका नेतृत्व करता है ।

गुरु नानक वहाँ गये । जब मुल्ला ने कहा, ''परम दयालु और करुणामय ईश्वर के नाम पर, जो पैगम्बरों के भी पैगम्बर हैं,'' तो गुरु नानक मुस्कुराने लगे । वे बोले, ''इस मिथ्याचारी को देखो ।'' मुल्ला चिढ़कर बोले, ''तुम मुस्कुरा क्यों रहे हो?''

''क्योंकि मेरे मित्र, तुम प्रार्थना नहीं कर रहे हो और इसीलिये मैं मुस्कुरा रहा हूँ ।''

''मैं प्रार्थना नहीं कर रहा हूँ?''

''बिल्कुल नहीं । तुम्हारे भीतर प्रार्थना का भाव है ही नहीं ।''

मुल्ला बहुत नाराज हुए और उन्होंने जाकर काजी की अदालत में शिकायत करते हुए कहा, ''इस अविश्वासी दुष्ट ने हमारे मस्जिद में हम लोगों की प्रार्थना के समय मुस्कुराने का अपराध किया है । इसकी एकमात्र सजा मृत्यु है । इसे मरवा दीजिये ।''

गुरु नानक को काजी के सामने पेश किया गया । उन्होंने पूछा कि वे क्यों मुस्कुराये थे ।

''क्योंकि यह व्यक्ति प्रार्थना नहीं कर रहा था ।''

''तो फिर वह क्या कर रहा था?'' काजी ने पूछा ।

''आप उसे मेरे सामने लाइये, तो मैं बता दूँगा कि वह क्या कर रहा था ।''

काजी ने मुल्ला को पेश किये जाने का आदेश दिया । उसके आ जाने पर काजी ने कहा, ''मुल्ला आ गये हैं । (अब) बताइये कि उसकी प्रार्थना के समय आप क्यों हँसे थे ।''

गुरु नानक बोले, ''मुल्ला के हाथ में (कसम खाने के लिये) कुरान दीजिये । (मस्जिद के भीतर) जब ये 'अल्ला, अल्ला' कह रहे थे, उस समय ये अपने घर में रखे हुए किसी मुर्गे के बारे में सोच रहे थे ।''

बेचारे मुल्ला बड़ी उलझन में फँसे । वे दूसरे लोगों की अपेक्षा थोड़े अधिक ईमानदार थे, अत: उन्होंने स्वीकार किया कि वे मुर्गे के बारे में ही सोच रहे थे और सिक्ख गुरु को छोड़ दिया गया । इसके बाद काजी (मुल्ला की ओर मुखातिब होकर) बोले, ''अब दुबारा कभी मस्जिद में मत जाना । वहाँ जाकर अधर्म तथा मिथ्याचार करने से तो यही बेहतर है कि तुम वहाँ जाओ ही मत । जब तुम्हारी प्रार्थना करने की इच्छा न हो, तो वहाँ मत जाओ । एक मिथ्याचारी मत बनो और वहाँ जाकर मुर्गे के बारे में सोचते हुए परम दयालु और करुणामय ईश्वर का नाम मत लो ।'' (CW, 9:232,233)

पृष्ठ ५२४ का शेष भाग

छत्रसाल ने पन्ना राज्य को अपनी राजधानी बनाई। जिस प्रकार शिवाजी महाराज को उनके गुरु समर्थ रामदास जी ने स्वतन्त्रता के लिए प्रोत्साहित किया था, उसी प्रकार वीर छत्रसाल के गुरु महामति प्राणनाथ ने उन्हें विभिन्न विषयों पर शिक्षा दी थी। आज भी बुन्देलखण्ड वीर राजा छत्रसाल की शौर्य-गाथा को बड़े गर्व से गाता है। ○○○

भारत की ऋषि परम्परा (११)

स्वामी सत्यमयानन्द

(भारत वर्ष के प्राचीन ऋषियों का सरल, सरस और सारगर्भित विवरण स्वामी सत्यमयानन्द जी महाराज, सचिव, रामकृष्ण मिशन, कानपुर ने अपनी पुस्तक 'Ancient Sages' में किया है। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। – सं.)

देवर्षि नारद

भारतीय धार्मिक भावाधारा में देवर्षि नारद जैसा चित्ताकर्षक प्रभाव न किसी अन्य ऋषि का हुआ है और न हो सकेगा । उपनिषद, पुराण, सूत्र-ग्रन्थ, स्मृति-शास्त्र, स्तव-गान, संगीत-विद्या, भाष्य इत्यादि सभी धार्मिक ग्रन्थों में उनके अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं । देवर्षि नारद की कथाओं का अनेकों बार वर्णन किया जाता है । हाथ में वीणा, गले में पुष्प-माला और मुख से सदैव 'नारायण-नारायण' की शब्द-ध्वनि करने वाले नारदजी से प्रत्येक आबालवृद्धवनिता सभी परिचित हैं ।

नारदजी का वर्णन भक्त के रूप में धनी-निर्धन, सज्जन-दुर्जन, विनम्र-अहंकारी, राजा-रंक, देवता-यक्ष-गन्धर्व-असुर, स्वर्ग से पाताल तक, सर्वत्र भगवान का नाम गुणगान करते हुए प्राप्त होता है । वे शुभ-कर्मों के प्रेरक, अशुभ कर्मों के विनाशक, मुनि, ऋषि, महर्षि, अपूर्व संगीतज्ञ और देवर्षि हैं । वे सभी विषयों के ज्ञाता और प्रत्येक परिस्थिति को सँभालने में निपुण हैं । श्रीरामकृष्ण देव ने नारदजी के विषय में बहुत सुन्दर कहा है कि नारद जैसे ऋषि लोगों में आध्यात्मिक चेतना जागृत करने हेतु संसार में रहते हैं ।

नारदजी के विषय में इतने विभिन्न प्रसंग प्राप्त होते हैं कि उनके जीवन-चरित को सुसंगत लिपिबद्ध करने में विद्वानों को भी कठिनाई का अनुभव होता है। उनके ये विरोधाभासी और पूरक प्रसंग ही उनके विलक्षण व्यक्तित्व में विविध रंगों का सृजन करते हैं । किन्तु भारतीय दृष्टिकोण इसमें कुछ भी असंगत नहीं देखता और यही उसकी धर्म-जगत में विशेषता है ।

यद्यपि नारदजी के जन्म के विषय में अनेक कथाएँ हैं, किन्तु कल्पभेद की दृष्टि से इन सबका समाधान हो जाता है । पुराणों में वर्णन आता है कि नारद का जन्म ब्रह्मा के अंक से हुआ था । नारदजी को प्रजापति के रूप में कर्तव्य-पालन करने के लिए कहा गया, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया । सनकादि कुमारों की तरह उनका भी पूर्व-ज्ञान अक्षुण्ण था। अत: संसार में फँसने की उनकी इच्छा नहीं थी ।

नारदजी आजीवन ब्रह्मचारी के रूप में रहना चाहते थे। इसलिए उन्हें ब्रह्माजी का कोपभाजन होना पड़ा । ब्रह्माजी पहले से ही अप्रसन्न थे, क्योंकि उनके चार मानसपुत्र – सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन त्याग और ब्रह्मचर्य का जीवन जीने के लिए चले गए थे । इसलिए ब्रह्माजी ने अन्य प्रजापतियों को अपने कर्तव्यादि का निर्वाह करने के लिए बाध्य किया। नारद द्वारा इसका अस्वीकार करने पर ब्रह्माजी ने उन्हें शाप दिया, 'तुम्हें अपने ज्ञान की अल्पकाल के लिए विस्मृति हो जाएगी । तुम्हारा जन्म उपबर्हण गन्धर्व के रूप में होगा। उसके बाद तुम्हारा जन्म दासी-पुत्र के रूप में होगा और पुन: तुम मेरे पुत्र के रूप में जन्म लोगे ।'

नारदजी की मृत्यु हुई। शाप के कारण उनका जन्म गन्धर्व चित्रकेतु के पुत्र उपबर्हण के रूप में हुआ । यद्यपि शाप के कारण वे पूर्व-ज्ञान से वंचित थे, तथापि अस्फुट स्मृतियों ने उनके मन को ईश्वर की ओर प्रेरित किया । देवगुरु बृहस्पति ने उन्हें विष्णु-उपासना में दीक्षित किया । नारद स्वयं भी संगीत-विद्या में पारंगत हो गए थे और उन्होंने वीणा नामक यन्त्र का आविष्कार किया । एक बार जब वे ध्यान कर रहे थे, तब गन्धर्व चित्ररथ की पचास कन्याएँ वहाँ से गुजरीं । वे सब उपबर्हण पर मुग्ध हो गईं और उन्हें संगीत द्वारा मोहित किया । उपबर्हण भी उनके ऊपर मोहित हो गए और उन सबके साथ विवाह किया । इस तरह वे अपने बृहत् परिवार के पालन-पोषण में दिन बिताने लगे । अन्तिम समय समीप आने पर उन्होंने अपना समय तपस्या में बिताया और शान्तिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुए ।

नारदजी का अगला जन्म एक ब्राह्मण कुटुम्ब में सेवा
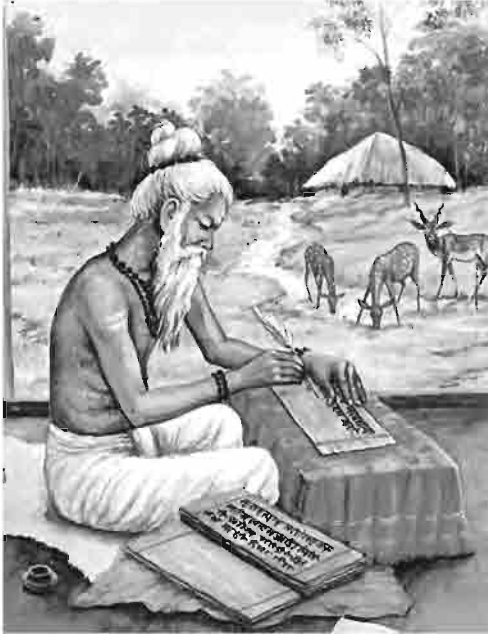
करने वाली दासी के पुत्र के रूप में हुआ । ऐसा कहा जाता है कि नारदजी के जन्म के समय बहुत वर्षा हुई और अकाल-ग्रस्त क्षेत्र को राहत प्राप्त हुई थी। इसलिए ब्राह्मण ने उनका नाम नारद अर्थात् 'जल प्रदाता' रखा। ब्राह्मण के घर अनेक परिव्राजक साधु और सन्त-महात्मा आते थे । बालक नारद उनकी सेवा और सत्संग कर उनके प्रसादी-अन्न को ग्रहण करता था। इससे उसका मन क्रमशः पवित्र और एकाग्र हुआ। उसने अपने मन को श्रीहरि के ध्यान में लगाया ।

एकबार नारद की माँ गाय दुहने जा रही थी कि उनके पैर में सर्प ने काट लिया। उनकी मृत्यु हो गई । बालक नारद अब स्वतन्त्र था । वह ब्राह्मण का घर छोड़कर जंगल में तपस्या करने चला गया। वहाँ वह व्याकुलतापूर्वक भगवान से निरन्तर प्रार्थना करने लगा । उसकी तपस्या फलीभूत हुई और एक दिन उसे भगवान का अलौकिक दर्शन हुआ । बालक नारद को जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसकी कोई सीमा नहीं थी, किन्तु अगले ही क्षण वह दिव्य झाँकी अदृश्य हो गई। नारद बहुत निराश हो गया।

उसे आकाशवाणी सुनाई दी, 'वत्स ! तुम्हें अभी मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है, इस जन्म में वह तुम्हें पुनः प्राप्त नहीं होगा । तुम मेरे गुणों का गान करते हुए विचरण करो और लोगों को भक्ति-मार्ग का उपदेश दो ।' नारद कुछ आश्वस्त हुआ। दुःख भूलकर वह एकान्त परिव्राजक-भक्त का जीवन व्यतीत करने लगा । हाथ में वीणा, नयनाभिराम बालक-भक्त गाँव-नगर सर्वत्र भ्रमण कर हरि-कीर्तन करने लगा । वह धार्मिक ग्रन्थों का उत्तम कथावाचक बन गया । भगवत्-चिन्तन ही उसका एकमात्र सम्बल था, वह भगवद्भाव में विभोर रहने लगा । निरानन्द के स्थान पर अब केवल आनन्द रह गया ।

इस तरह समय बीतने लगा । नारदजी भगवान के उत्तम भक्त बन गए । जीवन के अन्तिम दिनों में जब ब्रह्माजी के शाप का प्रभाव क्रमशः कम होता गया, नारदजी गंगा के पवित्र तट पर तपस्या में लग गए और अपना शरीर त्याग दिया । ब्रह्माजी पुनः अपने पुत्र को पाकर प्रसन्न हुए । किन्तु नारदजी ने गृहस्थ जीवन यापन करने से अस्वीकार कर दिया। ब्रह्माजी असन्तुष्ट हो गए । उन्होंने नारदजी से पूछा, 'तुम गृहस्थाश्रम स्वीकार करने में इतना भयभीत क्यों होते हो? अनेक गृहस्थों को मुक्ति प्राप्त हुई है ।' उन्होंने और भी आगे कहा, 'शिवजी ने महर्षि संजय की कन्या मालती को वरदान दिया है कि इस जन्म में उसका विवाह तुमसे होगा । इसलिए तुम बद्रिकाश्रम जाओ और वहाँ नर-नारायण ऋषियों की उपस्थिति में मालती से विवाह करो ।'

नारदजी का पुनः दिव्य रूप, गुण और ज्ञान के साथ जन्म हुआ । वे और उनके एक मित्र ऋषि पर्वत साथ-साथ रहते थे। दोनों में अच्छी मित्रता थी । उन्होंने निश्चय किया कि वे एक साथ तीर्थ-स्थानों की यात्रा करेंगे । उन्होंने आपस में एक अनुबन्ध किया कि वे अपने मन के विचारों को एक-दूसरे से छुपाएँगे नहीं । यदि दोनों में से कोई इस नियम का उल्लंघन करता है, तो दूसरा उसे शाप दे सकता है । यात्रा करते-करते वे कुछ क्लान्त हो गए और उन्होंने निर्णय लिया कि जहाँ कहीं भी पहला स्थान प्राप्त होगा, वहाँ वे चातुर्मास करेंगे । उन्होंने राजा संजय के अतिथि निवास में आश्रय लिया ।

तेजस्वी ऋषिद्वय को अतिथि के रूप में पाकर राजा बहुत आनन्दित हुए और सब प्रकार से उनकी सेवा-अभ्यर्थना में लग गए । राजा ने अपनी पुत्री मालती को उनकी परिचारिका के रूप में नियुक्त किया । नारद और मालती एक-दूसरे पर मोहित हो गए । नारद ने यह बात पर्वत ऋषि से छिपा रखने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु पर्वत सब कुछ जान गए । उन्होंने नारद को बन्दर होने का शाप दिया । नारद ने भी पर्वत को सौ वर्षों के लिए नरकवास का शाप दिया ।

यद्यपि नारद वानर रूप में थे, तो भी मालती का उनके प्रति अविचल प्रेम था । राजा और उनके सभासद इसके कारण बहुत चिन्तित थे । इस तरह सौ वर्ष बीत गए । नारद द्वारा पर्वत को दिए गए शाप का समय पूरा हुआ और वे शापमुक्त हुए । पर्वत नारद से मिलने आए । नारद का सहृदय व्यवहार देखकर पर्वत ने अपना शाप वापस ले लिया । इस तरह नारद ने पुनः अपना दिव्य शरीर प्राप्त किया और मालती के साथ आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगे ।

दक्ष प्रजापति के शाप के कारण नारद का जन्म उनके पुत्र के रूप में हुआ । यह कथा इस प्रकार है । दक्ष के हर्यश्व नामक पाँच हजार पुत्र थे । विवाह के पूर्व वे सब तपस्या कर रहे थे । तब नारद कश्यप के पुत्र थे । नारद को भय हुआ कि पाँच हजार लोगों के विवाह और तदनन्तर उनकी सन्तानोत्पत्ति के कारण जनसंख्या बहुत बढ़ जाएगी । वे हर्यश्व लोगों के पास गए। उनसे कहा कि वे अभी मात्र बालक ही हैं और उन्हें आवश्यकता है कि वे इसका पता लगाएँ कि इस संसार में उनकी होने वाली सन्तानों के रहने के लिए पर्याप्त स्थान है कि नहीं । हर्यश्वगण इतस्ततः सभी

दिशाओं में खोज के लिए निकल पड़े और अनन्त संसार में जाने के बाद उनका लौटना हुआ नहीं ।

दक्ष प्रजापति ने शबलश्वगण को उत्पन्न किया । उनको भी नारद ने उपरोक्त युक्ति द्वारा खोज के लिए भेज दिया । दक्ष ने पुन: पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किए और नारद ने भी पुन: उसी युक्ति का उपयोग किया । सब कुछ जानने के बाद दक्ष ने नारद को शाप दिया कि वे भी उनके पुत्रों की तरह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में निरन्तर विचरते रहें । कहीं-कहीं वर्णन आता है कि दक्ष ने नारद को अपनी सन्तान के रूप में जन्म लेने का शाप दिया । भगवद्गीता में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं, 'देवर्षियों में मैं नारद हूँ ।' नारदजी का चरित्र इतना मधुर और प्रसिद्ध है कि धार्मिक ग्रन्थों में प्राय: उनका उल्लेख प्राप्त होता है । यद्यपि इनमें कुछ असम्बद्धता दिखाई देती हो, पर इन कथाओं द्वारा उनके महान गुणों का परिचय प्राप्त होता है । ऐसी ही एक कथा का वर्णन किया जा रहा है :

नारदजी ने एकबार कीट के रूप में जन्म लिया । वे जब एक मार्ग पर रेंग रहे थे, तो उन्होंने देखा कि एक रथ तेज गति से उनकी ओर दौड़ता चला आ रहा है । भयभीत होकर वे स्वयं को रथ के पहियों से बचाने लगे । रथ में बैठा हुआ राजा उसकी दशा देख जोर से हँसने लगा । कीड़ा सुरक्षित स्थान पर पहुँचकर राजा से कहने लगा, 'मेरी ये चेष्टाएँ उपहास करने योग्य नहीं हैं। प्रत्येक जीव को प्रत्येक जन्म में अपना शरीर अत्यधिक प्रिय लगता है । जैसे आपको अपने शरीर के प्रति मोह है, वैसे मुझे अपने शरीर के प्रति है ।'

नारद ने ही महाकवि वाल्मीकि को श्रीराम की महानता के बारे में अवगत कराया और उन्हें अमर महाकाव्य रामायण रचने की प्रेरणा दी । यह ग्रन्थ आज भी सहस्रों लोगों के जीवन में प्रेरणा का संचार कर रहा है ।

मानवजाति के महानतम ग्रन्थ महाभारत में देवर्षि नारद का अमिट वर्णन प्राप्त होता है। नारदजी से सम्बन्धित कथाएँ, उपाख्यान और कार्यों ने सहस्रों श्लोकों वाले इस अतुलनीय और अद्भुत धर्म-ग्रन्थ में विभिन्न रसों की अभिवृद्धि की है ।

नारद और हनुमानजी के बीच एक रोचक प्रसंग प्राप्त होता है । दोनों ईश्वर के परम भक्त और संगीत विशारद थे । हनुमानजी ने एक विशिष्ट राग गाया । इसके प्रभाव से आसपास की सारी वस्तुएँ पिघल गईं। यहाँ तक कि वह शिला भी पिघल गई, जिस पर नारदजी की वीणा रखी हुई थी । राग समाप्त होने पर शिला अपने मूल ठोस आकार में परिवर्तित हो गई। किन्तु नारदजी की वीणा उस शिला में फँस गई । नारदजी ने शिला को पिघलाकर अपनी वीणा प्राप्त करने के लिए राग गाना आरम्भ किया । किन्तु अनेक प्रयासों के बावजूद भी उन्हें सफलता नहीं मिली । हनुमानजी ने पुन: संगीत आरम्भ किया और वह शिला पिघल गई । नारदजी इससे प्रसन्न हुए और हनुमान को आशीर्वाद दिया ।

सभी शास्त्रों में माया के विषय को बड़ा सूक्ष्म और दुष्कर कहा गया है । एक बार नारद ने भगवान श्रीकृष्ण से उनकी माया के विषय में जिज्ञासा की । स्वामी विवेकानन्द ने इस कथा का अपने व्याख्यान 'माया और मुक्ति' में बहुत सुन्दर ढंग से वर्णन किया है । एकबार श्रीकृष्ण को प्यास लगी। उन्होंने नारद से पानी लाने के लिए कहा । वे शीघ्रतापूर्वक पास के एक गाँव में गए । वहाँ उनकी भेंट एक सुन्दर युवती से हुई और वे उस पर मोहित हो गए । उन्होंने विवाह किया, उनकी सन्तानें हुईं और इस प्रकार आनन्दपूर्वक जीवन बीतने लगा । एक दिन उस गाँव में भयंकर बाढ़ आ गई । नारद के स्वजन-परिजन, घर-गृहस्थी, सबका उसमें अन्त हो गया । केवल वे ही बचे रहे। वे शोकपूर्वक विलाप करने लगे । तभी श्रीकृष्ण वहाँ प्रकट हुए और उनसे पानी लाने के बारे में पूछा, जिसके लिए वे मात्र आधा घण्टा पूर्व निकले थे ।

इसी प्रकार की एक कथा अन्य पुराण में प्राप्त होती है । नारद जी एक तालाब में डुबकी लगाते हैं और उनका शरीर एक सुन्दर नारी के रूप में परिवर्तित हो जाता है । उनकी पूर्व-स्मृति पूर्णतया लुप्त हो जाती है । वे नारी के रूप में एक ऋषि से विवाह करते हैं और उनकी अनेक सन्तानें होती हैं । एकदिन जब वे उसी तालाब में पुन: डुबकी लगाते हैं, तो उनकी स्मृति पुन: लौट आती है । वे जैसे पहले थे, वैसे हो जाते हैं । पहले जो कुछ हुआ, उन्हें उसका लेशमात्र भी स्मरण नहीं रहता । पुन: भगवान श्रीकृष्ण उन्हें ज्ञान प्रदान करते हैं ।

नारदजी ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म के मूर्तिमान आदर्श थे । कुछ ग्रन्थों में उनका उल्लेख आचार्य, ग्रन्थ-रचयिता अथवा प्रेरक के रूप में प्राप्त होता है । सभी ग्रन्थों में उनका वर्णन एक महान भक्त के रूप में प्राप्त होता है। भक्तिमार्ग के साधकों के लिए उनका 'नारद-भक्तिसूत्र' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है । इसके अलावा उनके 'नारद परिव्राजकोपनिषद' के ज्ञान

शेष भाग पृष्ठ ५३८ पर

सत्कर्म, धर्म और चरित्र-निर्माण

स्वामी सत्यरूपानन्द

सत्कर्म कैसे करें? – जब मनुष्य प्रकृति की सहायता करता है, तब वह भी मनुष्य को उन्नत और समृद्धशाली बनाती है। यदि वह प्रकृति के प्रतिकूल आचरण करेगा, तो वह भी उसके विकास में सहायक नहीं होती। ऐसे ही यदि कोई समाज के प्रति दुष्टाचरण करता है, तो किसी-न-किसी प्रकार उसे भी प्रत्यावर्तित होकर वही कष्ट मिलता है। यदि तुम दूसरो का उपहास नहीं करोगे, तभी तुम उपहास से बचोगे। तुम जिस मापदंड से दूसरों को तोलोगे वही मापदंड तुम्हारे लिये भी लगता है। जब हम दूसरों के दोष को देखते रहते हैं, तो वैसे ही दोष हममें भी आ जाते हैं। हम अपने को श्रेष्ठ और दूसरों को तुच्छ समझकर निन्दा करने में ही मग्न रहते हैं। इस अहंकार का फल हमें इसी जन्म में या अगले जन्म में मिलता है। मनुष्य खुद जैसा बीज बोता है, उसे वैसा ही फल चखना पड़ता है। हमारे आदर्श और ध्येय स्पष्ट और स्वच्छ होने चाहिए। सेवा का कोई भी सुयोग मिलने पर तन, मन, धन से सेवा करो। सर्वश्रेष्ठ मनुष्य वही है, जो दूसरों का सेवक है। दूसरों के प्रति सेवा-भावना ईश्वर की पूजा है। यह सत्कर्म है, यह हमारा धर्म है।

धर्म क्या है?

मना वासना दुष्ट कामानयेरे। मना सर्वथा पापबुद्धि नकोरे।
मना धर्मता नीति सोडू नको रे। मन अंतरी सार विचार राहो।

धर्म याने अच्छे गुणों का धारण करना। दूसरों के हित का, कल्याण का विचार करना, सेवा, परोपकार और हर व्यक्ति में परमेश्वर को देखना, यही धर्म है। दूसरों के सुखों का विचार करने वाला धार्मिक है, दूसरों में परमात्मा को देखने वाले को दुख नहीं होगा, ऐसा चिन्तन करने वाला ही धार्मिक है। धार्मिकता यानी सर्वत्र सुखिनः सन्तु – सभी सदा सुखी हों, ऐसी भावना होना। जो सबका कल्याण चाहता है, सबके हित का विचार करता है, सत्य का आचरण करता है, सदाचारी है, जिसमें शालीनता है, जिसके मन में सबके लिये प्रेम, दया, सहानुभूति है, वही मनुष्य धार्मिक है। जो सबका सम्मान करता है, किसी से भी राग-द्वेष नहीं करता, दूसरो से अपेक्षा नहीं करता, दूसरो को देने के लिए ही उसके हाथ खड़े रहते हैं, जिससे सभी प्रेम करें, वह धार्मिक है। यही धर्म है।

मन को सन्तुष्ट रखें। हमेशा शंकालु न बनें। शंका और अत्यधिक कामना से मन असन्तुष्ट और अशान्त रहता है। अपनी दिनचर्यानुसार कार्य करते रहने से हमें संतोष मिलता है। सन्तोष-प्राप्ति हेतु सभी लोग आतुर रहते हैं । सन्तुष्टि हेतु सकारात्मक विचार रखें। उससे मनुष्य सुखी होता है। निराशा उसके पास फटकती तक नहीं। नकारात्मक दृष्टिकोण रखनेवाला मनुष्य सब कुछ पाकर भी दुखी रहता है। इसलिए अपनी दृष्टि बदलें और सुखी रहें।

सकारात्मक विचार होने से हम सदा प्रसन्न और स्वस्थ्य रहते हैं। सन्तुष्टि केवल पैसे से नहीं आती। यह मनुष्य की मनोवृत्ति है। बहुत अधिक वेतन और घर में सब सुविधा होकर भी हमारे अड़ोस-पड़ोस में लोग दुखी रहते हैं। सकारात्मक दृष्टिकोण से ही सन्तुष्टि मिलती है। सभी जीवों में शिव को देखकर सेवा करने से ही मन को समाधान मिलता है।

चरित्रवान बनो, निर्भय बनो – मन बिना लगामवाले घोड़े के समान है, जो हमें कहीं भी हमारी इच्छा के विपरीत भटकाता रहता है और कभी गिराकर हमें घायल कर देता है। अतः हमें मन को लगाम लगाना चाहिए। हमें अपने मन को नियन्त्रित कर उसका स्वामी बनना चाहिये। हमारा मन बोलेगा वैसा न कर, हमें अपने अनुसार उसे संचालित करने का प्रयत्न करना चाहिए । हमारे विकास की जवाबदारी हमारी ही है। उसे हमें ही निभानी है। हमारा हमारे जीवन में खुद का क्या योगदान है, इस पर विचार करना चाहिए।

व्यक्तित्व विकास के लिए एक दिनचर्या बनाओ। जल्दी सोने और जल्दी उठने का अभ्यास करो। व्यायाम करके शरीर सुदृढ़ बनाओ। अपने व्यक्तित्व को विशेष सक्षम और पूर्ण बनाओ। प्रियभाषी बनो, दूसरों की सहायता करो, इससे दूसरे लोग तुमसे आकर्षित होंगे और तुम्हारा सम्मान करेंगे। दूसरों के धर्म का आदर करो। बड़ों को सम्मान दो, छोटों को प्रेम दो। अपने जीवन को कभी स्वार्थी मत बनाओ। निःस्वार्थ सेवा करने में आनन्द मिलता है। निःस्वार्थ सेवा अध्यात्म का दूसरा नाम है। जीवन जीने के लिए सिर्फ पैसा कमाना ही ध्येय न रखकर, अपने में इन सद्गुणों का विकास करो। स्वावलम्बी बनो। अपने माता-पिताजी, बहन-भाई, परिवार, समाज सबके लिये उपयोगी बनो।

तुम्हारा जीवन 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' होना चाहिए। अपने जीवन के विकास करने के लिये चरित्रवान बनो। सुखी जीवन हेतु विद्यार्जन और धनार्जन करो। व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य पूर्णता प्राप्ति है। हर व्यक्ति चैतन्यस्वरूप है, इसलिए सबकी ईश्वर-भाव से सेवा करो। ऐसा करने से हमारा आध्यात्मिक विकास होगा।

ईश्वर से प्रेम करो। उन्हें अपना संगी बनाओ। अपना सुख-दुख ईश्वर को बताओ। अपने जीवन की घटना में ईश्वर की कृपा को देखो। प्रतिदिन सबेरे-शाम ऐसा चिन्तन करो। इससे तुम्हारा जीवन सुखमय, आनन्दमय और शान्तिमय होगा। ○○○

स्वामी तपस्यानन्द और निष्काम-कर्म

स्वामी तपस्यानन्द जी महाराज (१९०४-१९९१) रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-संघाध्यक्ष थे। अपने नाम के अनुरूप वे स्वभावत: तपस्वी थे। उनका जीवन एक आदर्श संन्यासी का जीवन था, जो उनके दैनन्दिन जीवन के प्रत्येक कार्य में झलकता था। महाराज जी एक कुशल प्रशासक के साथ बहुत बड़े विद्वान भी थे। उन्होंने अंग्रेजी में अनेक पुस्तकें लिखीं और कुछ मूल ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया। प्रत्येक महान कार्य के पीछे अत्यधिक श्रम और लगन होती है। पूज्य महाराजजी ने सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत का अंग्रेजी में अनुवाद किया था, जिसे आज भी अनेक लोग बड़े उत्साह से पढ़ते हैं।

स्वामी तपस्यानन्द जी महाराज तब चेन्नई मठ के अध्यक्ष थे। चेन्नई मठ से अनेक अंग्रेजी एवं तमिल-तेलुगु पुस्तकें भी प्रकाशित होती थीं। एकबार चेन्नई आश्रम से दो संन्यासी बंगलोर की पुस्तक प्रदर्शिनी में रामकृष्ण संघ से प्रकाशित साहित्य विक्रय-केन्द्र लगाने गए। उनके वहाँ से लौटने पर स्वामी तपस्यानन्द जी ने उनसे पुस्तक-विक्रय के बारे में पूछा। संन्यासीद्वय ने पूरा विवरण देते हुए कहा कि वहाँ श्रीमद्भागवत के अंग्रेजी अनुवाद की बहुत माँग थी और पुस्तक प्रदर्शिनी में यह ग्रन्थ कहीं भी उपलब्ध नहीं था। उन्होंने स्वामी तपस्यानन्द जी से विनती की कि वे यदि इस ग्रन्थ का अनुवाद करते हैं, तो अंग्रेजी पाठक इसका लाभ उठा सकेंगे और रामकृष्ण मिशन द्वारा ऐसे संस्कृत ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद हो, ऐसी अपेक्षा भी पाठकों द्वारा की जा रही है।

जब संन्यासीद्वय ने यह प्रस्ताव रखा, तब महाराजजी की आयु ७५ वर्ष की थी। महाराजजी ने स्पष्ट कह दिया कि इस उम्र में श्रीमद्भागवत जैसे बृहत् संस्कृत ग्रन्थ का अंग्रजी में अनुवाद उनसे नहीं हो पाएगा। किन्तु जब उन्हें इस विषय में अधिक आग्रह किया गया, तो उन्होंने कहा कि वे सोचकर बताएँगे।

एक सप्ताह बाद स्वामी तपस्यानन्द जी महाराज ने साधुओं को बुलाकर कहा कि यदि वे श्रीमद्भागवत का अंग्रेजी में अनुवाद-कार्य आरम्भ करते हैं, तो उन्हें उसे पूर्ण करने में लगभग दो साल लग जाएँगे। साधुओं ने उनसे कहा, ''समय की कोई समस्या नहीं हैं, किन्तु हमें आपके स्वास्थ्य की चिन्ता है।'' महाराज ने इस बारे में कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

अगले दिन उन्होंने एक साधु को एक साईड कोरे रफ कागजों का गड्डा लाने के लिए कहा। महाराज हमेशा ऐसे ही व्यवहृत (रफ) कागज उपयोग में लाते थे। उनका कहना था कि सारी सम्पत्ति भगवान श्रीरामकृष्ण देव की है, और हमें उसका सदुपयोग करना चाहिए। महाराज ने पुन: उन्हीं साधु को स्लेट और चॉक लाने के लिए कहा। साधु सुनकर अवाक हो गए कि महाराज स्लेट और चॉक लेकर क्या करेंगे! महाराज ने कहा, ''कभी-कभार अनुवाद की भाषा ठीक नहीं रहती है, कागज को व्यर्थ क्यों गँवाना? यदि मेरे पास स्लेट रहेगी, तो उस पर लिखकर मिटाया भी जा सकता है और संशोधित अनुवाद पुन: कागज पर लिखा जा सकता है।''

तो महाराज ने कार्य का शुभारम्भ कर दिया। कार्यालय में भी बैठे-बैठे वे अनुवाद किया करते थे। भक्तों के आने पर वे लेखनी रखकर उनसे बात करते और उनके चले जाने पर पुन: अपना कार्य शुरू करते। ऐसा वे बहुत आसानी से करते थे, उनके विचार-प्रवाह में कोई व्यवधान नहीं आता था।

कुछ दिन बाद उन्होंने उन्हीं साधु को बुलाकर कहा, ''देखो, समयाभाव के कारण यह अनुवाद का कार्य बहुत मन्थर गति से चल रहा है। इसलिए मैं सोच रहा हूँ कि प्रात: तीन बजे से पाँच बजे तक अनुवाद का कार्य करूँ और उसके बाद अपनी नित्य उपासना करने बैठूँ।'' साधु भी भावुक हो गए कि महाराज को इस उम्र में इतना परिश्रम करना पड़ रहा है।

कुछ दिन बाद राज्य विद्युत विभाग ने एक सूचना-पत्र जारी किया कि निश्चित विद्युत-इकाई खर्च होने पर अतिरिक्त विद्युत इकाई पर दुगुना बिल भरना पड़ेगा। इससे महाराज चिन्ता में पड़ गए। साधु लोग खुश हो गए कि अब महाराज प्रात:काल ३ बजे उठकर अनुवाद का कार्य बन्द कर देंगे। किन्तु उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब महाराज

ने एक साधु को लालटेन लाने के लिए कहा। महाराज प्रात:काल लालटेन की रोशनी में अनुवाद करना चाहते थे। साधुओं ने इसका विरोध किया कि ऐसा करने से उनकी आँखें खराब हो जाएँगी। किन्तु महाराज ने कहा कि बचपन में गाँव में रहते समय वे लालटेन का ही उपयोग करते थे और उन्हें इसका अभ्यास है। सौभाग्यवश कुछ दिनों बाद राज्य विद्युत विभाग ने यह प्रतिबन्ध हटा दिया।

अनुवाद करते समय महाराज पहले स्लेट पर लिखते थे और बाद में कागज पर लिखकर टाइपिस्ट को देने के बाद अंग्रेजी के एक विद्वान-भक्त को प्रूफ-संशोधन के लिए देते थे। दो साल तक इसी तरह कार्य करने के बाद उनका अनुवाद पूर्ण हुआ। उन्होंने एक साधु को बुलाया और बालसुलभ आनन्द व्यक्त करते हुए उनके हाथों पाण्डुलिपि सौंपकर राहत की साँस ली।

किन्तु इसके बाद जो हुआ, उससे सचमुच पूजनीय महाराज की अनासक्ति परिलक्षित होती है। उन्होंने एक संन्यासी को बुलाकर उनसे पुस्तक की छपाई आदि के व्यय का मूल्यांकन करने के लिए कहा। उक्त संन्यासी ने एक-दो दिन बाद पूजनीय महाराज से कहा कि श्रीमद्भागवत के अंग्रेजी अनुवाद को चार भागों में अच्छी तरह छपाने के लिए लगभग दो लाख रुपये लगेंगे। स्मरण रहे, कि पूजनीय महाराज तब रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष थे और चेन्नई मठ से पुस्तकों का भी प्रकाशन होता था।

महाराज को यह व्यय बहुत अधिक लगा। उन्होंने संन्यासी को बुलाकर कहा, ''इस कार्य के लिए श्रीरामकृष्ण देव के धन का इतना व्यय करना व्यर्थ होगा।'' उन्होंने संन्यासी से कहा कि वे पाण्डुलिपि का गट्ठा बाँधकर कहीं रख दें। सब लोगों को दुख हुआ कि क्योंकि उन्होंने महाराज को निरन्तर दो वर्ष इस कार्य के लिए परिश्रम करते देखा था। किन्तु महाराज के मन में इसके लिए कोई दुख नहीं था। साधुओं ने महाराज को समझाने का प्रयत्न किया कि पुस्तक के छपने के बाद उसके विक्रय से व्यय की भरपाई हो जाएगी, किन्तु महाराज नहीं माने। अन्तत: साधुओं ने उन्हें समझा-बुझाकर कहा कि वे पूर्व-प्रकाशन प्रस्ताव योजना द्वारा दो लाख की निधि जमा कराने के बाद पुस्तक छपाई के लिए देंगे। अनिच्छापूर्वक उन्होंने इसके लिए सहमति दी। इसके अलावा महाराज ने स्वयं भी सिंगापुर एवं मलेशिया में श्रीमद्भागवत पर व्याख्यान दिए थे, जिसके कारण दान की राशि प्राप्त हो सकी थी।

हम गीता में पढ़ते हैं कि हमें कर्म करना चाहिए, किन्तु उसके फल की इच्छा नहीं होनी चाहिए। स्वामी तपस्यानन्द जी महाराज का जीवन सचमुच इसका ज्वलन्त उदाहरण था। ○○○

पृष्ठ ५३५ का शेष भाग

सम्बन्धी उपदेश उतने प्रसिद्ध नहीं है, जितना कि उनका 'नारद-भक्तिसूत्र' ग्रन्थ प्रसिद्ध है ।

सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद में नारद-सनत्कुमार उपाख्यान का वर्णन आता है । सनत्कुमारजी ब्रह्माजी के मानस-पुत्र थे। नारदजी शिष्य के रूप में सनत्कुमारजी के पास जाते हैं । सनत्कुमारजी ने उनसे पूछा कि उन्होंने अन्यत्र जो कुछ भी सीखा है, उसे बताएँ । नारदजी ने कहा, 'भगवन् ! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, इतिहास-पुराण रूप पाँचवा वेद, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या और देवजनविद्या-नृत्य-संगीत आदि, यह सब जानता हूँ । किन्तु इतना सब जानने पर भी मैं शोक से ग्रस्त हूँ । हे भगवन् ! मुझे इस शोक के पार ले जाइए ।' तब सनत्कुमारजी उन्हें आत्मज्ञान का उपदेश देते हैं। वेदान्त के ये उत्कृष्ट उपदेश माने जाते हैं ।

नारदजी की यह विशिष्टता है कि प्राचीन वेद से लेकर समकालीन ग्रन्थों में भी उनका उल्लेख प्राप्त होता है । इतने दीर्घ अन्तराल में विभिन्न लेखकों द्वारा किसी भी व्यक्तित्व का चित्रण करने अनेक परिवर्तन होते हैं । किन्तु, नारदजी से सम्बन्धित घटनाओं के वर्णन में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है । यह उनके सुदृढ़ व्यक्तित्व का द्योतक है, जिसे कोई म्लान भी नहीं कर सकता और अनावश्यक सुधार भी नहीं सकता ।

नारदजी के जीवन और कार्य का मुख्य उद्देश्य था – जीव के मन को उन्नत कर उसे ईश्वर की ओर प्रेरित करना। केवल मानवीय स्तर के जीवों के लिए ही नहीं, अपितु देवता, असुर आदि के लिए भी । नारद विषयक सभी कथाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने बड़ी सुन्दरता से अपना उद्देश्य पूर्ण किया । **(क्रमश:)**

श्रीराम के मृदु मंजुल चरण

मोहन लाल चौबे, होशंगाबाद

भगवान श्रीराम के जिन चरण-कमलों का भक्त नित्य ध्यान करते हैं, उनका बड़ा सुन्दर वर्णन उत्तरकांड के मंगलाचरण में मिलता है –

कोसलेन्द्रपद कंजमंजुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृंगसंगिनौ।।

कौसलपुरी के राजा श्रीरामचन्द्र जी के दोनों सुन्दर एवं कोमल चरणकमल शिवजी एवं ब्रह्माजी द्वारा वंदित हैं। वे ही चरण माता जनकनंदिनी सीताजी के कर-कमलों से सस्नेह सेवित हैं। ये चिन्तकों के मन-भ्रमर के साथी हैं। अर्थात् ध्यान करने वालों का मन इन्हीं चरणों में रमा रहता है। मेरा मन भी उन्हीं चरण कमलों के ध्यान में सदा लगा रहे।

कविकुल शिरोमणि गोस्वामीजी ने चरण सेवा के लिए तीन विशेषण दिये। 'वंदितौ' चरणों की वन्दना करना चाहिए। ''लालितौ' इनका लालन-पालन 'चरण सेवा' करनी चाहिए। तथा 'मनभृंगसंगिनौ' चरणों का मन से चिन्तन, ध्यान करना चाहिए। 'मनभृंगसंगिनौ' से चिन्तन मानसिक, 'वन्दितौ' से वन्दना, वाचिक, एवं 'सरोज लालितौ' से कर्म सेवा इस प्रकार मानसिक, वाचिक एवं कर्मणा तीन प्रकार से चरण सेवा करने का संकेत दिया है। गोस्वामी जी का संकेत है कि रघुनाथ जी के चरण कमलों का मन में ध्यान, मुख से वन्दना एवं हाथों से सतत सेवा करते रहो। जैसा ध्यान ब्रह्मा जी एवं भगवान शिवजी करते हैं, ऐसा ध्यान तथा जैसी चरण सेवा श्री जानकी जी करती हैं ऐसी सेवा करो।

शिवजी के हृदय रूपी मानसरोवर में ये युगल चरण हंसवत् क्रीड़ा करते हैं ! विभीषण जी कहते हैं –

हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मैं देखिहऊँ तेई।।(५/४१/८)

जनकजी कौन से चरणों का प्रक्षालन करते हैं –

जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव विराजहीं।
जे सकृत सुमिरत विमलता मन सकल कलिमल भाजहीं।।
जे परसि मुनि बनिता लही गति रही जो पातक मई।
मकरन्दु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई।।
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहै।
ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु जय जय सब कहैं।।
(१/१२३ छन्द १,२)

ऐसे पतित पावन, योगीजन ध्यातव्य चरणकमलों को जनक जी को पखारने का सौभाग्य मिला। उन्हीं मंगलकारी चरणों की शिव, पार्वती और ब्रह्माजी भी सेवा करते हैं –

खल खंडन मंडन रम्य छमा पद पंकज सेवित संभु उमा। (६/११० छंद ११)

बालकांड में चरणों की ऐश्वर्यपरक वंदना और उत्तरकांड में माधुर्य पूर्ण वन्दना की गई। किन्तु जहाँ-जहाँ चरणों को भवसागर तारक जहाज से उपमित किया गया, वहाँ-वहाँ चरणों को मंजुल कहा है। भव सागर से पार उतरने का एक मात्र साधन चरण रूपी जहाज ही है –

यत्पादप्लवमेकवमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षवताम्।।१/६

विनयपत्रिका (६४) में भवसागर संतरण हेतु चरण-पोत ही बताया गया है –

भव जलधि पोत चरनार बिंद जानकी रमण आनन्द कंद।

यद्यपि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति ज्ञानादेव कैवल्य' और 'ग्यान मोक्ष प्रद वेद बखाना' ऐसा कहा गया है। किन्तु सगुणोपासना में तो ज्ञान, वैराग्य, मोक्ष आदि सब चरण सेवा से ही प्राप्त हो जाते हैं –

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं।
अन इच्छित आवइ वरिआई। (७/११८/४)

ऐसी महिमा है भगवान के चरणों की ! विनय पत्रिका (पद २१८) में तुलसीदासजी श्रीरामजी के उन मंगलमय चरणों को देखने की लालसा प्रगट करते हुए कहते हैं –

कबहिं देखाइहौं हरिचरन।
समन सकल कलेस कलि-मल, सकल मंगल करन।१।
सरद भव सुन्दर तरुनतर अरुन वारिज वरन।
लच्छि लालित ललित करतल छवि अनुपम धरन।२।
गंग जनक अनंग अरिप्रिय कपट बटु बलि धरन।
विप्र तिय ऋग वधिक के दुख दोष दारुन दरन।३।

इसीलिये तुलसीदासजी सभी देवताओं से श्रीरघुनाथजी के चरण कमलों में अखण्ड प्रेम का वर माँगते हैं –

चरन बंदि बिनवौ सब काहू देरू राम पद नेह निबाहू।

भगवान के चरणों ने पापियों का उद्धार किया। इन चरणों ने शापित दंडकारण्य को हरा भरा कर दिया, कपटी मारीच मृग के पीछे दौड़े और उसका उद्धार कर दिया। तभी तो मारीच भी कहता है –

नित परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।

श्री सहित अनुज समेत कृपा निकेत पद मन लाइहौं।

इन्हीं परम पावन चरणों के दर्शन की अभिलाषा विभीषण जी इस प्रकार करते हैं –

देखिहऊँ जाइ चरन जलजाता।

अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।

जे पद परसि तरी रिषिनारी दंडक कानन पावनकारी।

जे पद जनकसुताँ उर लाए कपट कुरंग संग घर धाए।

हर उर सर सरोज पद जेई, अहो भाग्य मैं देखिहऊँ तेई।

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरत रहे मन लाइ।

ते पद आजुबिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ।(५/४२)

प्रभु के चरणकमलों के पराग में भक्तों के मन-भ्रमर बैठकर मकरंद पान करते रहते हैं –

पदराजीव बरनि नहिं जाहीं।

मुनि मन मधुप बसिन्ह जिन्ह माहीं।। (१.४८.१)

अहिल्या का मन-मधुकर भी इस शोकनाशक पदपद्मपराग का पान करता है – **पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना। (२.२११.३)** कैसे हैं ये चरण – इनके स्पर्श से पापियों के पाप नष्ट हो जाते हैं – **परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही – (१.२११ छंद १)**

भगवान के चरणों से निकली गंगा पतित पावनी हैं – **जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी। सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मन सिरधरेउ कृपाल हरी।।**

चरण कमल हैं, इसलिए कोमल हैं, मंजुल हैं, सुंदर हैं। इनका लालन-पालन जनक नंदिनी अपने समस्त वैभव को छोड़कर सेवा भाव से करतीं हैं। वे राजरानी हैं। उनकी सेवा के लिये हजारों दासियाँ हैं, तो भी वे समस्त ऐश्वर्य को छोड़ स्वकरों से प्रभु की चरण सेवा करती हैं। इसीलिए कवि लिखते हैं 'जानकी कर सरोज लालितौ'। श्रीसीताजी चरण-सेवा के लिए वन जाती हैं – **छिनु छिनु प्रभु पद कमल विलोकी रहिहऊ मुदित दिवस जिमि कोकी ...। (२/६५/४)** सीताजी की सेवा का बड़ा सुन्दर वर्णन उत्तरकांड में मिलता है –

जानति कृपासिंधु प्रभुताई।

सेवति चरन कमल मन लाई।

जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी।

बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी।।

निज कर गृह परिचरजा करई।

रामचंद्र आयसु अनुसरई।। (७/२३.४-६)

जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।

राम पदारविंद रति करति सुभावहि खोइ।।(७/२४)

श्री जानकी जी कृपासागर श्रीराम जी की प्रभुता को जानती हैं इसलिए उनके चरण कमलों की सेवा मन लगाकर करती हैं। प्रभु के चरण कमल हैं। कमल में लक्ष्मीजी रहती हैं। जनसामान्य, लक्ष्मी 'ऐश्वर्य-धन-सम्पत्ति' को चाहते हैं, किन्तु लक्ष्मीजी का मन चरणों में ही है, इस मर्म को सीताजी जानकर सदा चरणों में सेवारत रहती हैं। सीताजी ब्रह्मा, विष्णु, महेश से उनकी शक्तियों समेत वंदित हैं। किन्तु प्रभु चरणों की सतत सेवा के कारण ही वे करुणानिधान श्रीराम को अति प्रिय हैं।

पद – पिय चरित सिय चित चितैरी लिखित निज हित भील। (गीतावली' ७/३५)

यद्यपि लक्ष्मी परम चंचला हैं, किन्तु चरणों का ऐश्वर्य जानकर सदा प्रभु-चरण सेवा में व्यस्त रहती हैं –

यद्यपि परम चपल श्री संतत् थिर न रहत कबहूँ।

हरि पद पंकज पाइ अचल भइ करम वचन मनहूँ।।

श्रीरामजी के चरण अत्यन्त कोमल हैं, इसीलिये उनके चरणों के स्पर्शन-दर्शन से श्रीरामजी की सास पृथ्वीमाता, वन, पहाड़, नदी, चराचर, ग्रामवासी सभी धन्य और मोक्ष के अधिकारी हो गये –

परसि राम पद पदुम परागा।

मानति भूमि भूरि निज भागा।

परसि चरन रज अचर सुखारी।

भए परम पद के अधिकारी।।

भगवान के ऐसे मृदु मंगल चरण हम सबका मंगल और भक्ति-मुक्ति प्रदान करें।। ○○○

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (११)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monasteries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

स्वामी गम्भीरानन्द महाराज की मन की एकाग्रता अद्भुत थी। इस सम्बन्ध में मैं एक घटना का वर्णन करता हूँ। बेलूड़ मठ में साधुओं को दो बार चाय दी जाती है, एक बार सुबह नाश्ते के समय और दूसरी दिन के ३ बजे। मुख्य कार्यालय में सेवारत साधुओं को कर्मचारी द्वारा अपराह्न की चाय उनके कार्यालय में ही दी जाती थी। चाय बेलूड़ मठ के रसोई-घर में ही बनती थी। कर्मचारी वहीं से एक बड़ी केतली में हमलोगों के लिये चाय ले आता था। पहले स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज को चाय देने के बाद कर्मचारी हमें चाय दिया करता था।

स्वामी गम्भीरानन्द

एक दिन रसोइये ने चाय बनाते समय गलती से चीनी के बदले नमक डाल दिया। हम लोंगो ने जैसे ही चाय का एक घूँट पिया, चाय नमकीन लगी और तुरन्त उसे फेंक दिया। इसी बीच भण्डारी महाराज दौड़ते-दौड़ते कार्यालय आए और भूल के लिए बहुत क्षमा माँगी। उन्होंने बताया कि दूसरी चाय बन रही है और शीघ्र ही भेज दी जायेगी।

मैं स्वाामी गम्भीरानन्द जी महाराज को यह सूचना देने के लिए ऊपर उनके कमरे में गया। मैंने देखा कि वे अपनी पुरानी आरामकुर्सी पर आँखें बन्द किये बैठे हुए हैं। जैसाकि मैंने पहले बताया है कि आँखें बन्द करके वे गहन चिन्तन किया करते थे। जब मैं उनके कमरे में गया, तो उन्होंने आँखें खोलकर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखा। मैंने कहा, ''महाराज, आपको जो नमकीन चाय दी गयी थी, उसके बदले दूसरी चाय जल्द ही दी जा रही है। कृपया अपना कप दीजिए, मैं धोकर लाता हूँ।''

उन्होंने विस्मयपूर्वक पूछा, ''नमकीन चाय ! मैंने तो पूरी चाय पी ली है। मैं नहीं जानता था कि उसमें नमक है !''

आश्चर्यचकित होने की बारी तो अब मेरी थी। तब मेरी समझ में आया कि अवश्य ही महाराजजी चाय पीते समय बहुत एकाग्रता से कुछ ऐसा चिन्तन कर रहे थे, जिससे उनको पता ही नहीं चला कि चाय में नमक है।

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज बहुत स्पष्टवादी थे। कुछ लोग उनके इस व्यवहार को दूसरों के प्रति संवेदनहीन समझते थे। हममें से जिन्हें भी महाराज के सान्निध्य में रहने का सुयोग मिला था, वे सभी उनको एक संवेदनशील संन्यासी के रूप में जानते थे। लेकिन वे अपनी भावनाओं को शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं करते थे, बल्कि उन्हें कार्य के रूप में परिणत करते थे। जब मैं प्रथम बार बेलूड़ मठ मुख्य कार्यलय में सेवा देने आया, तो महाराज ने मुझसे कहा था, ''देखो, तुम ऐसे स्थान पर कार्य करने आये हो, जहाँ हमारे संघ के सभी साधु सम्बद्ध हैं। तुम्हें उन सबके साथ भ्रातृवत् प्रेमपूर्वक व्यवहार करना होगा। उनसे औपचारिक पत्राचार करते समय तुम्हें इस बात का ध्यान रखना होगा। सरकारी कार्यालयों में वेतनभोगी कर्मचारी कार्य करते हैं। वे भले ही हृदयहीन हो सकते हैं, लेकिन हम उनसे भिन्न हैं। हमारे संघ में जिन साधु-भ्रातृवृन्द से हमारा सम्बन्ध है, वे सभी स्वैच्छिक सेवारत हैं।''

दक्षिण भारत आश्रम के हमारे एक संन्यासी आश्रम हेतु दान एकत्र करने के लिए अन्य शहर में गये थे। दुर्भाग्यवश, दूषित जल पीने के कारण उनको हेपटाइटिस (Hepatitis) हो गया और उन्हें अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। अस्पताल में उनकी चिकित्सा का बिल बहुत अधिक आया। उस आश्रम के अध्यक्ष महाराज ने कहा कि आश्रम की आर्थिक अवस्था बहुत खराब होने के कारण वे स्वयं ही दान द्वारा अपना बिल चुकाने की व्यवस्था करें। यद्यपि वे अस्पताल से वापस आ गये थे, किन्तु तब भी बहुत दुर्बल थे तथा बिल चुकाने हेतु दान के लिये अन्यत्र जाने की सोच भी नहीं सकते थे। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज को पत्र लिखकर उन्होंने अपनी दुर्दशा बतायी।

महाराज उनका पत्र पढ़कर बहुत व्यथित हो गये। उन्होंने मुझसे कहा, ''देखो, कैसे हृदयहीन लोग हैं ! उस बेचारे बालक (संन्यासी) को अस्पताल का अपना बिल चुकाने हेतु धन एकत्र करने के लिए विवश किया जा रहा है।'' तत्पश्चात् उन्होंने मुख्य कार्यालय के खजांची को उक्त साधु के अस्पताल का बिल चुकाने के लिए रुपये भेजने को कहा।

बेलूड़ मठ में बहुत से अवकाश प्राप्त (retired) संन्यासी रहते थे। उनमें से कुछ संन्यासी वृद्धावस्था के विभिन्न

रोगों से ग्रस्त थे। लेकिन आर्थिक अभाव के कारण उन्हें यथोचित चिकित्सा सुविधा प्राप्त नहीं हो रही थी। अनेक साधुओं को रोगावस्था में चुपचाप सहन करना पड़ता था, जबकि उचित उपचार द्वारा उन्हें ठीक किया जा सकता था। अर्थाभाव के कारण यह समस्या बहुत वर्षो से उपेक्षित रही।

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने ही पहली बार इस विषय में कुछ करने का निश्चय किया। उन्होंने संघ के वृद्ध रोगग्रस्त संन्यासियों की सेवा के लिए एक कोष का निर्माण किया। उनकी प्रेरणा से बहुत से दानदाताओं ने अग्रसर होकर कोष के लिए पर्याप्त दानराशि दी। उन्होंने साधुओं के स्वास्थ्य-लाभ हेतु 'आरोग्य-भवन' का निर्माण कराया। इसमें अनेक रुग्ण वृद्ध संन्यासियों के रहने की व्यवस्था है। स्वामी गम्भीरानन्द जी की रुग्ण संन्यासियों के प्रति संवेदना थी, तभी तो उन्होंने ऐसी सुविधा प्रदान करने का प्रयास किया।

रामकृष्ण संघ के महासचिव के रूप में स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज संघ के सर्वोच्च मंगल हेतु यथासम्भव प्रयास करते थे। वे पिरामिड शैली की प्रशासनिक व्यवस्था को मानते थे। संघ के सुचारु संचालन के लिये वे संघ द्वारा संचालित आश्रमों के अध्यक्षों की निर्भरता को मानते थे। आश्रम-अध्यक्षों की चयन प्रक्रिया में उनका और संघ के अन्य न्यासी-संन्यासियों का संयुक्त निर्णय होता था। योग्य संन्यासियों की आश्रम अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति की जाती थी।

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज जी की यह अपेक्षा रहती थी कि संन्यासीवृन्द कार्य से सम्बन्धित समस्याओं के विषय में पहले अपने आश्रम के अध्यक्ष से सम्पर्क करें। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई संन्यासी एक आश्रम से दूसरे आश्रम में स्थानान्तरण चाहते हैं, तो वे पहले अपने आश्रम के अध्यक्ष महाराज से परामर्श करें, न कि सीधे महासचिव महाराज को पत्र लिखें। सभी संन्यासी मुख्य कार्यालय के इस नियम से परिचित हैं। फिर भी, यदि कोई संन्यासी स्थानान्तरण के लिए पहले अध्यक्ष महाराज को सूचित किये बिना ही सीधे महासचिव महाराज को पत्र लिखते हैं, तो महाराज उन्हें निर्देश देते थे कि वे अपने आश्रम के अध्यक्ष महाराज के द्वारा मुख्य कार्यालय से सम्पर्क करें।

एक बड़े शैक्षिक संस्थान के संन्यासी ने इस नियम का पालन न कर स्थानान्तरण के लिए सीधे महासचिव महाराज को पत्र लिखा। वे संन्यासी उस आश्रम के खजांची एवं लेखापाल (Cashier and Accountant) थे। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने उन संन्यासी से उचित प्रक्रिया के द्वारा अर्थात् अपने आश्रम के अध्यक्ष महाराज के द्वारा पत्र भेजने को कहा। लेकिन संन्यासी ने ऐसा नहीं किया। एक दिन सुबह बिना किसी पूर्व सूचना के वे संघ के मुख्य कार्यालय में पहुँच गये। उस समय स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज मुख्य कार्यालय की निचली मंजिल में थे। संन्यासी ने महाराज को प्रणाम किया। महाराज ने हँसते हुए संन्यासी का अभिवादन किया और पूछा, "तुमने आज आने की सूचना हमें नहीं दी। तुम्हारे आश्रम में सब कुशल-मंगल तो है न?"

संन्यासी ने उत्तर दिया, "महाराज, मैंने उस आश्रम को छोड़ दिया है। अब वहाँ वापस नहीं जाऊँगा। मैं स्थानान्तरण चाहता हूँ।"

यह सुनकर महाराज बहुत अप्रसन्न हुए। उन्होंने संन्यासी से कड़े शब्दों में कहा, "तुम अपना कार्य ऐसे ही छोड़कर चले आये हो। इस प्रकार तुम्हें कभी भी स्थानान्तरण नहीं मिलेगा! तुम तुरन्त अपने आश्रम वापस चले जाओ।"

संन्यासी ने कहा, "महाराज, क्षमा करें, मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

महाराज ने ऊँचे और कठोर शब्दों में कहा, "यदि तुम वापस नहीं गये, तो तुम्हें संघ छोड़ना होगा !"

हममें से जो लोग वहाँ उपस्थित थे, उन्हें संन्यासी महाराज के प्रति दुख हुआ तथा आश्चर्य भी हुआ कि स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने उनके साथ क्यों ऐसा कठोर व्यवहार किया?

संन्यासी ने स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज को प्रणाम किया और चुपचाप वहाँ से चले गये। वे संन्यासी मुझसे बहुत वरिष्ठ थे। मैं उनके पीछे-पीछे बाहर आया और प्रणाम कर पूछा, "महाराज, अब आप क्या करेंगे? आप कहाँ जायेंगे?"

उन्होंने कहा, "मैं कोलकाता जा रहा हूँ। वहाँ अपने एक संन्यासी-बन्धु से मिलकर निर्णय करूँगा कि मुझे कहाँ जाना है।" मैं उनके साथ बस स्टैण्ड तक गया और दुखपूर्वक उन्हें बस में बैठकर जाते हुए देखा।

जब मैं वापस आया, तो देखा कि स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज अभी तक निचली मंजिल पर ही हैं। उन्होंने हमलोगों से पूछा, "वह कहाँ है? क्या वह चला गया?" हमलोगों ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। हम सभी चुप थे। तत्पश्चात् उन्होंने कहा, "क्या यहाँ उसके कोई संन्यासी बन्धु नहीं हैं?" अब भी सब मौन थे। उसके पश्चात महाराज ऊपर अपने कार्यालय में चले गये।

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज का उन संन्यासी के प्रति

ऐसा व्यवहार अवश्य ही उन्हें कठोर शिक्षा देने के लिए था। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज अन्य की अपेक्षा अधिक जानते थे कि किसी भी संन्यासी को थोड़े से अनुशासन-भंग के लिए संघ से बाहर निकालना उनके अधिकार में नहीं हैं। इस प्रकार का निर्णय केवल न्यासी-समिति के संयुक्त परामर्श द्वारा लिया जाता है।

कोलकाता के अन्य साधुओं ने उन संन्यासी महाराज को आश्रम लौट जाने को सहमत किया । इस सूचना से हमलोगों ने राहत की साँस ली। अपने आश्रम वापस जाने के बाद उन संन्यासी महाराज ने पुन: स्थानान्तरण के लिए प्रयास नहीं किया।

इस घटना के लगभग एक महीने बाद स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज विभिन्न आश्रमों के औपचारिक यात्रा पर गये। उन्होंने मुझे भी अपने साथ चलने के लिए कहा। हम अपनी यात्रा के दौरान उस आश्रम में भी गये, जहाँ वे संन्यासी महाराज रहते थे। वहाँ कार से पहुँचने के बाद स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज उन संन्यासी महाराज से हँसते हुए इस प्रकार मिले, मानो उपरोक्त घटना कभी घटी ही न हो। यहाँ तक कि उन्होंने उन संन्यासी को सुदूर एक आश्रम में अपने साथ आने का निमन्त्रण भी दिया।

संघ के अनुशासन को बनाए रखने के लिए स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज को कभी-कभी कठोर व्यवहार करना पड़ता था। किन्तु उनके हृदय में कभी भी किसी के प्रति कटुता नहीं रहती थी। इसके दूसरे उदाहरण स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज थे। जब स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज महासचिव थे, तब स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज सह-महासचिव थे।

कभी-कभी साधु-जीवन में अनुशासन के लिए कनिष्ठ साधुओं को डाँटना आवश्यक हो जाता था। इस अप्रिय कार्य के लिए प्राय: स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज को कहा जाता था। वे बड़े सहृदय संन्यासी थे। उनके हृदय में साधुओं के लिए प्रेम एवं सद्भावना के सिवा और कुछ भी नहीं था। अत: साधुओं को डाँटना उनके लिए बहुत अधिक कष्टकर हो जाता था। फिर भी, कर्तव्य-पालन की दृष्टि से वे यह कार्य करते थे। उन्हें दुख से यह अभिनय करना पड़ता था। मैं स्पष्ट समझता था कि स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज की भावनाएँ स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज से किसी भी प्रकार से भिन्न नहीं हैं। **(क्रमश:)**

संन्यासी और गृहस्थ दोनों महान हैं

भगिनी निवेदिता

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके जीवन और सन्देश से सम्बन्धित यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

प्रत्येक धर्म किसी विशिष्ट विचार पर केन्द्रित होता है। जैसे कि प्राचीन मिस्र मृत्यु-रहस्य पर, फारस शुभ और अशुभ के रहस्य पर, ईसाई धर्म अवतार के प्रेम द्वारा पाप नाश पर। केवल हिन्दु धर्म ही वैराग्य और मुक्ति का ध्येय रखता है, अन्य किसी भी लौकिक वस्तु का नहीं। सचमुच हिन्दु धर्म की यह श्रेष्ठता ही उसकी दुर्बल कड़ी है। अपनी महानता के इस दुर्गुण को दूर करने में वह सक्षम है। अपने इसी गुण के द्वारा वह अपने सम्पर्क में आने वाले अन्य धर्मों के साथ समन्वय स्थापित करता है। धर्म के रूप में हिन्दु की आत्मसात् करने की शक्ति और सभ्यता के रूप में उसकी प्रतिरोध-शक्ति – यह मानवीय इतिहास का सर्वाधिक आश्चर्यमय विरोधाभास है। विभिन्न मूल मतों से ग्रथित इस धर्म का समन्वित तत्त्व वह वेदान्त दर्शन है, जिसने इस्लामी कालावधि के सुधारवादी सम्प्रदायों को अस्वीकार किया। उसने ईसाई कालावधि के भी सुधारवादी सम्प्रदायों को अस्वीकार किया। वस्तुत: यह हिन्दु धर्म की अपने सम्पर्क में आनेवाले नवीन आदर्शों के प्रति समादर की अभिव्यक्ति थी।

आज हिन्दु इस आवश्यकता का अनुभव करते हैं कि देश की धार्मिक भावनाओं की सबसे बड़ी पुकार जीवन के सभी नवीन विचारों को आत्मसात करने में है। हमें ईसाइयों के 'संकीर्ण दृष्टिकोण' को भी अपनाना होगा। ऐसे लोग, जिन्हें केवल स्वर्ग की इच्छा है, मुक्ति की नहीं, उनके लिए भी कुछ धार्मिक शिक्षा और प्रेरणा

की व्यवस्था करनी होगी। सदाचार और पवित्रता का सम्मान करना होगा। सदाचार का सम्बन्ध कर्तव्य से है, जबकि पवित्रता का सम्बन्ध त्याग से है। एक महान संन्यासी की पृष्ठभूमि में अनेक सदाचारी गृहस्थों का सहयोग आवश्यक है। अत: गृहस्थाश्रम का यथोचित ज्ञान होना चाहिए और संन्यास-आश्रम का भी।

वास्तव में किसी व्यक्ति या समुदाय की प्रगति उसके किसी अन्य सहयोगी की दुर्गति पर आधारित नहीं होती। आदर्श सदैव अनन्त और दिव्य है। उच्च नैतिक समाज से ही महानतम सन्तों की उत्पत्ति होती है। अवतारों का जन्म पवित्र माता-पिताओं के यहाँ होता है। जिस वैवाहिक जीवन में निष्ठापूर्वक सम्बन्धों का पालन होता है, वहीं यथार्थ संन्यास सम्भव है, न कि विषय-लोलुप और अशान्त जीवन यापन करने वालों के लिए। इसी प्रकार समाज में उच्च धार्मिक आदर्श को बनाए रखने के लिए अच्छे गृहस्थों का होना आवश्यक है। इसके लिए गृहस्थ की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि संन्यासी की।

यदि ऐसा है, तो हमें अपने प्राचीन धर्म-ग्रन्थों में इस नवीन आदर्श को ढूँढ़ना होगा। सबके लिए हमें ऐसे आदर्श को खोजना होगा, जो इस संसार में हमें वीर की भाँति कार्य करने की प्रेरणा दे और आश्रय दे। त्याग की प्राप्ति कर्मयोग अथवा कर्म-त्याग दोनों के द्वारा हो सकती है। हमारे अनेक धर्म-ग्रन्थ इसका उपदेश देते हैं। किन्तु संन्यास के पक्ष में प्रचलित पूर्वाग्रह के कारण हम उन सभी कर्मों की उपेक्षा कर देते हैं, जिसका विधान धर्म करता है। यूरोपियन समाज में संन्यास के आदर्श का अभाव उसकी दुर्बलता है। ठीक उसी प्रकार हिन्दु-धर्म की दुर्बलता उसके गृहस्थ आदर्श के महत्त्व के अभाव में है। इसका कारण यह है कि जिस समय हमारे (विधि-निषेधात्मक) धार्मिक-आदर्शों को ग्रन्थ-बद्ध किया गया, उस समय समाज आध्यात्मिक गुण और भौतिक समृद्धि, दोनो से सम्पन्न था। किन्तु जब भौतिक दृष्टि से हम दुर्बल हो गए, तब हमारे लिए अध्यात्म गुणों को भी बनाए रखना दुष्कर हो गया। आज आवश्यकता है कि हम इन दोनों को प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करें।

इसके लिए हमें कर्म को महत्त्व देना होगा। इस संसार को एक पाठशाला की तरह देखना होगा, जिसमें हम एक कक्षा से दूसरी कक्षा में उन्नति के लिए प्रयत्न करते हैं। हमें दृढ़तापूर्वक कार्य में लग जाना होगा और ध्येय की प्राप्ति होने तक निरन्तर संघर्ष करना होगा। हमारे दर्शन शास्त्र कहते हैं कि सांसारिक वस्तुओं में पूर्ण प्रगति प्राप्त करना असम्भव है, किन्तु व्यावहारिक जगत में सापेक्ष प्रगति पूर्णतया सम्भव है। चूँकि हम इसी व्यावहारिक जगत में निवास करते हैं, हम इस प्रकार कार्य करें, मानो अगले कदम पर ही हमें पूर्णता का आदर्श प्राप्त हो जाए।

व्यावहारिक जीवन के कार्यों में भी हम अपने सम्मुख सर्वोत्कृष्ट आदर्श रखें। एक कारीगर से किसी ने उसकी कार्य-कुशलता को साधारण आँकते हुए पूछा। उसने क्रोधित होकर कहा, 'मैं केवल अच्छे स्क्रू ही नहीं बनाता, अपितु सबसे अच्छे स्क्रू बनाता हूँ।' यही हमारा दृष्टिकोण होना चाहिए। हमें यथासम्भव सर्वोत्कृष्ट स्क्रू बनाने होंगे। प्रत्येक क्षेत्र में हमें ऐसा होना होगा। श्रेष्ठ और उच्चतम वस्तु प्राप्त करना हमारे लिए कठिन नहीं है। श्रेष्ठ से कम नहीं चाहिए। किसी आसान कार्य को खोजने की आवश्यकता नहीं है। कोई तुच्छ कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। यदि भारतमाता की सेवा श्रेष्ठतर ढंग से करनी है, तो जिस शक्ति के द्वारा एक संन्यासी का निर्माण हुआ है, उसी शक्ति से (अच्छा) कारीगर भी तैयार करना होगा। इससे भारतमाता की सेवा अधिक अच्छी तरह से होगी।

हमारे मित्रों के प्रति भी हमारे आदर्श उच्च हों। कोई भी व्यक्ति बुरी संगत में न रहे। संन्यासी अथवा गृहस्थ, प्रत्येक व्यक्ति गौरवशाली हो। ब्राह्मण अथवा शुद्र, प्रत्येक व्यक्ति अपने आत्म-सम्मान को बनाए रखे और दूसरों से भी वैसी अपेक्षा रखे। दूसरे को पशुतुल्य जीवन यापन करते देखने में हमारी उदासीन भूमिका से किसी का भला नहीं होता।

विद्यालय में पाठ्यविषयों का वर्गीकरण किया जाता है, किन्तु यह सब शिक्षा के अन्तर्गत आता है। विद्यालय के अधिकारीगण को इन सब विषयों का समान रूप से ध्यान रखना होता है। यही बात सभ्यता के बारे में है। एक व्यापारी की सत्य-निष्ठा भी उतनी ही निवेदन के योग्य है, जितना कि एक संन्यासी का त्याग। यदि संसार में सत्यनिष्ठ व्यक्ति नहीं रहते हैं, तो धार्मिक संघों का विनाश अवश्यंभावी है।

अतएव, हिन्दु धर्म व्यावहारिक और लौकिक जीवन की आवश्यकता को पूर्णतया स्वीकार करता है। अपने विकास के लिए वह अक्षय भण्डार से ऊर्जा प्राप्त कर पुन: विरोधाभासी आदर्शों का समन्वय स्थापित करने को उद्यत है। सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में ही त्याग के जीवन की झलक प्राप्त होती है। केवल अरण्य में रहने वाले साधु ही नहीं, अपितु नगर में रहने वाले कसाई और गृहिणी भी मुक्ति को प्राप्त कर सकते है। OOO

गुणान्वेषण : एक अच्छी आदत

पुरुषोत्तम नेमा, गोटेगाँव

इस संसार में गुणियों की कभी कमी नहीं रही। क्योंकि हमलोग 'सत्-चित्-आनन्द' की विरासत को सहेजे हुए हैं। अनन्त गुणों के आकर से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है – सभी परम पिता परमात्मा की सन्तान हैं, जो अनन्त गुणों के भण्डार हैं। अनवरत रूप से गणना करने पर भी ऋषियों को कहना पड़ा – **'नेति-नेति'**। हमें भी **'तत्त्वमसि'** कहकर स्मरण करा दिया कि अपने ब्रह्म रूप को भूलो मत।

किन्तु क्या कारण है, यह संसार दोषाच्छादित दिखने लगा? मनोविज्ञान इसके उत्तर में कहता है – **'यथा दृष्टि, तथा सृष्टि।'** हम संसार को उसके वास्तविक रूप में न देखकर स्वेच्छानुरूप देखना चाहते हैं। चाहने से क्या नहीं होता है, संकल्प के धनी हैं ही, मानते ही संसार रजतगिरि के स्थान पर कज्जल गिरि बन जाता है। इतना भयंकर कि इसे त्यागने की इच्छा बलवती होने लगती है। इसलिए ममतामयी जगन्माता सारदा देवी ने अपने अन्तिम उपदेश में एक महिला-भक्त से कहा था, जिसका संस्कृतानुवाद है –**'पुत्री ! यदि शान्तिमभिलषसि, तर्हि न कस्यापि दोषस्त्वया चिन्तनीयः, केवलं स्वदोष एवं द्रष्टव्यः'** – पुत्री, यदि शान्ति चाहती हो, तो किसी का दोष मत देखना, अपना देखना।

शान्तिकामी को दोष-दर्शन का विचार ही नहीं करना चाहिये। परन्तु हम अपने दुष्ट मन से लाचार हैं। वह कभी खाली रहता नहीं, कुछ-न-कुछ सोचता ही रहता है। यहाँ तक कि निद्रित अवस्था में भी ये 'मनीराम' सक्रिय रहते हैं। तो इन्हें सुधारने, सँभालने का एक अत्यन्त सरल उपाय यह है कि गुणान्वेषण की आदत डाल ली जाये।

हम जिसके भी सम्पर्क में आते हैं, उसमें अपनी समझ में आनेवाले प्रमुख गुणों पर ध्यान केन्द्रित करें, तब हम पायेंगे कि जिसे हम दोषों का भण्डार मानते थे, उसमें कुछ गुण भी हैं, जिन पर हमने कभी ध्यान नहीं दिया।

यदि हम व्यवहार में गुण-दर्शन की आदत को पुष्ट कर लें, तो अपने परिचितों के गुण-दर्शन की आदत 'मनीराम' की बन जायेगी और फिर सोते-जागते यही विचार उठा करेगा कि आज मैंने इतने लोगों के गुणों पर विचार किया तथा भविष्य के उपयोगार्थ अपनी डायरी में नोट किये।

अपने प्रिय मित्रों को भी इस गुण-दर्शन की प्रक्रिया में शामिल कर लें, ताकि उनके गुणान्वेषण से अपने दृष्टिकोण की तुलना की जा सके। ऐसा करने पर आप पायेंगे कि यह संसार गुणी व्यक्तियों से खाली नहीं है, किसी ने कहा है – **'गुन न हिरानो, गुन गाहक हिरानो है।'** ○○○

(विवेक ज्योति में समीक्षार्थ पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजें)

पुस्तक समीक्षा

रामेश्वर टाँटिया रचनावली (तीन खंडों में)

सम्पादक - डॉ. अर्जुन तिवारी

प्रकाशक – वाणी प्रकाशन, ४६९५, २१-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली -८००००४। पृष्ठ - खंड १- ५७०, खंड २ -५७० खंड ३-५००। मूल्य - प्रत्येक खंड - ८९५/-रु.

श्री रामेश्वर टाँटिया जी विख्यात व्यवसायी, समाजसेवी और साहित्यकार थे। उनके साहित्यों में तत्कालीन भारत की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश की झलक मिलती है। मानवीय सत्य धरातल पर आधारित उनकी संवेदनात्मक कहानियाँ आज भी लोग पढ़कर द्रवित हो जाते हैं। वे अपने जीवन में जिन लोगों से मिले, जो घटनाएँ घटीं, उनका सजीव वर्णन उन्होंने अपनी लेखनी से किया। उनका जीवन सादा और चिन्तन सदा उच्च रहा। उनके रचनाओं से जनमानस को प्रेरणा मिले, इसके लिये बड़े श्रम से उनका सटीक सामंजस्य स्थापित कर सम्पादन का गुरुतर भार वहन किया डॉ. अर्जुन तिवारी जी ने। श्रीनन्दलाल टाँटिया जी अपने पिताजी की इन स्मृतियों की विरासत के प्रकाशन में सदा क्रियाशील हैं। प्रस्तुत तीन खंडों में ग्रन्थ पठनीय और संग्रहणीय है। सम्पादक, प्रकाशक और प्रकाशन के प्रेरक सभी धन्यवाद के योग्य हैं।

भगवान श्रीकृष्ण

लेखक – डॉ. रमेशचन्द्र यावद 'कृष्ण'

प्रकाशक – कृष्ण कुटीर, कृष्णपुरी, लाइनपार, मुरादाबाद – २४४००१ (उ. प्र.), मोबाइल – ९४१२६६४५५८, पृष्ठ – ७३६, मूल्य – १,०००/-

श्रीकृष्ण को समर्पित डॉ. रमेशचन्द्र यादव 'कृष्ण' जी ने यज्ञीय जीवन के अजस्र प्रेरणास्रोत भगवान श्रीकृष्ण के महान जीवन पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला है। यादवजी एक अन्वेषक और चिन्तक हैं। उनकी रचना श्रीकृष्ण के सर्वांगीण व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करती है, जो जन-मानस में प्रेरक और सत्य, न्याय, प्रेम, सुख-शान्ति की स्थापना में सहयोगी है। ऐसे महान ग्रन्थ के प्रणेता श्री रमेशचन्द्र यादव जी को भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति और उदात्त जीवन प्राप्त हो, नई कृति की अशेष शुभकामनाएँ।

पुस्तकें प्राप्त हुईं –

१. संकटमोचन - लेखक - भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'
२. मुक्तक धारा - लेखक - बाबूलाल परमार
३. प्रजापति सन्त जन - लेखक - बाबूलाल परमार
४. दाल-रोटी - लेखक - अक्षय कुमार जैन

○○○

भगिनी निवेदिता की १५०वीं जन्मजयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ और मिशन के देश-विदेश के विभिन्न आश्रमों द्वारा अनेक कार्यक्रम किये गये –

आँटपुर आश्रम के द्वारा ३१ जुलाई, २०१६ को युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें ८५ युवकों ने भाग लिया। ७ अगस्त को भक्त-शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें २११ भक्त सम्मिलित हुए।

इन्दौर आश्रम में १४ अगस्त, २०१६ को आध्यात्मिक शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें १२५ भक्तों ने भाग लिया।

जम्मू आश्रम ने १४ अगस्त को भाषण और योगासन पर एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया, जिसमें १३० स्कूल के विद्यार्थियों ने भाग लिया।

मालदा आश्रम के द्वारा २१ अगस्त के आयोजित आध्यात्मिक शिविर में ४०० भक्तों ने भाग लिया।

नागपुर आश्रम ने ६ अगस्त को एक विशेष व्याख्यान का आयोजन किया, जिसमें १२५ लोग उपस्थित थे। आश्रम छात्रावास के एक विद्यार्थी को राष्ट्रसन्त तुकड़ोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय ने ४ अगस्त को सर्वश्रेष्ठ छात्र पुरस्कार प्रदान किया।

पुणे आश्रम ने महाविद्यालयीन छात्राओं के लिये १३ अगस्त को विशेष व्याख्यान का आयोजन किया, जिसे महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री सी. विद्यासागर राव ने उद्घाटन किया। अगले दिन सेवारत महिलाओं का एक अधिवेशन हुआ। कुल मिलाकर लगभग ७०० महिलाओं ने भाग लिया।

शिलाँग आश्रम ने जुलाई, २०१६ में सांस्कृतिक स्पर्धाओं का आयोजन किया, जिसमें १२० स्कूल के ३२०० विद्यार्थियों ने भाग लिया। ६ अगस्त को २८० विजेताओं को पुरस्कार दिया गया।

स्वामी विवेकानन्द पैतृक भवन में १९ अगस्त को व्याख्यान आयोजित किया गया, जिसमें २५० लोग उपस्थित थे।

चेरापूँजी आश्रम के शेला केन्द्र में ४ जुलाई को नवनिर्मित सेकेन्ड्री स्कूल भवन का उद्घाटन मेघालय के राज्यपाल श्री वी. सन्मुगनाथन ने किया।

हातामुनिगुड़ा आश्रम के नवनिर्मित डिस्पेन्सरी और बहुद्देशीय भवन का उद्घाटन १० अगस्त को रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने किया।

त्रिचुर आश्रम में 'प्रबुद्ध केरलम्' पत्रिका के सौ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में वर्षव्यापी शताब्दी समारोह का अन्तिम चरण १२ अगस्त को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर १०० वर्षों के लेखों का संग्रह डी.वी.डी के रूप में निकाला गया, जिसका विमोचन रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी और रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी ने किया। इस कार्यक्रम में ८०० भक्तों ने भाग लिया।

विजयवाड़ा आश्रम ने १२ वर्ष में एक बार होने वाले कृष्ण-पुरस्करम् महोत्सव में १२ से २३ अगस्त तक सेवाकार्य किए, जिसमें २५०० यात्रियों को आवास व्यवस्था और २ लाख २० हजार यात्रियों को भोजन, मट्ठा और दूध वितरित किया गया।

विवेकानन्द विश्वविद्यालय का ११वाँ दीक्षान्त महोत्सव २० अगस्त को कोयम्बटुर रामकृष्ण मिशन में आयोजित हुआ।

पुरी मठ ने पुरी रेलवे स्टेशन पर २५ अगस्त को साहित्य विक्रय-केन्द्र प्रारम्भ किया।

मलेशिया आश्रम ने ६ और ७ अगस्त को विशेष व्याख्यान और सास्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये।

सिंगापुर आश्रम ने ८ और ९अगस्त को भक्ति-संगीत और आध्यात्मिक शिविर का आयोजन किया। ○○○

PROUD TO BE INDIAN
PRIVILEGED TO BE GLOBAL

Committed To
Ramakrishna-Vivekananda
Movement

"The universe is ours to enjoy. But want nothing. To want is weakness. Want makes us beggars and we are sons of the king not beggars."

– Swami Vivekananda

PASSION TO EXCEL

- RSWM is one of the largest producers and exporters of Polyester Viscose blended yarn in the country.
- RSWM provides a variety of yarns (Cotton, Polyester and Viscose) comprising specialty, functional, technical & eco-friendly range of Grey, Dyed, Mélange and Fancy yarns.
- RSWM's integrated nine manufacturing units based at Kharigram, Banswara, Mandpam, Mordi, Rishabhdev, Ringas and Kanyakheri in Rajasthan.
- RSWM operates about 5,00,000 spindles and produces 1,40,000 MT of Yarn annually.
- RSWM has weaving and processing facilities with an installed capacity of 10 million mtrs. and 24 million mtrs. per annum respectively.
- RSWM has a state-of-the-art unit for Denim fabric with a capacity of 18 million mtrs. per annum.
- RSWM has its own 46 MW Captive Power Plant at Mordi (Rajasthan).
- RSWM enjoys its presence in India and across 78 countries.
- RSWM is the winner of SRTEPC has Highest Export Awards, Rajiv Gandhi National Quality Award, Energy Conservation Awards and many more.

Stars ki pasand

Visit us at: **www.lnjbhilwara.com; www.rswm.in**